सौ
व
र्ण

सुमित्रानंदन पंत



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थाङ्क-६६
ग्रन्थमाला सम्पादक-नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन

•

SAUVARNA
[Poems]
SUMITRANANDAN PANT
Bharateeya Gyanpeeth Publication
Second Edition 1963
Price Rs. 3 5o

•

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ काशी
मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय वाराणसी
द्वितीय संस्करण १९६३
मूल्य साढ़े तीन रुपये

•

विज्ञापन

सौवर्णके अन्तर्गत मेरे दो काव्य-रूपक संगृहीत हैं, जो अपने संक्षिप्त रूपमें आकाशवाणीसे प्रसारित हो चुके हैं। 'सौवर्ण'-का रचनाकाल मार्च १९५४ है और 'स्वप्न और सत्य' का नवम्बर १९५२।

१८/७ बी०, स्टेनली रोड,
इलाहाबाद

—सुमित्रानंदन पंत



द्वितीय संस्करण

इस संस्करणमें 'दिग्विजय' नामक नवीन काव्य-रूपक भी जोड़ दिया गया है, जिसकी प्रेरणा मुझे यूरी गगारिनकी अन्तरिक्ष यात्रासे मिली।

१५ फरवरी '६२ } —सुमित्रानंदन पंत

वंधुवर
श्री रामचंद्र टंडनको
सप्रेम

सौवर्ण

[संक्रमणकालीन मानव-मूल्योंके विकासका प्रतीक रूपक]

स्वर्दूत

स्वर्दूती

देव

देवी

कवि

सौवर्ण

अन्य स्त्री-पुरुष स्वर

[युगांतर सूचक वादित्र संगीत]

[डमरु ध्वनि के साथ नेपथ्य से उद्घोष]

पृष्ठभूमि में शोभित मौन हिमाद्रि श्रेणियाँ
विश्व सांस्कृतिक संचय सी स्थित शुभ्र सनातन,—
दिग् विराट् यह दृश्य योग्य अमरों के निश्चय !

परिक्रमा कर रहे देवगण धरा शिखर की,
अर्ध अगोचर, जगमग छायातप में भूषित :
श्लक्ष्ण मधुर कंठों से गाते दिव्य वंदना
नव्य युगांतर का मन में संकेत पा रहस !

शंख घंट वीणा मृदंग गंधर्व बजाते,
किन्नरियों के सँग किन्नर करते नीराजन :
प्रथम सुनें मंगल स्तव अंबर पथ में गुंजित,
श्रवण करें फिर अमरों का गोपन संभाषण !

[शंख घंट वीणा मृदंग आदि का उल्लसित घोष]

[देवताओं द्वारा स्तवन]

जय हिमाद्रि, जय हे !

जयति, स्वर्ग भाल अमर,
जयति, विश्व हृदय शिखर,
जयति, सत्य शिव सुंदर,
शाश्वत अक्षय हे !

पुण्य सेतु, देव निलय,
संस्कृति के शुचि संचय,
श्रद्धा सोपान अभय,
शुभ्र शांतिमय हे !

धरा चेतना निखार,
जन मन के ज्योति ज्वार,
संयम तप मुक्ति द्वार
चिर मंगलमय हे !

विश्व ह्रास, क्रम विकास,
उर में करते विलास,
कोटि सृजन प्रलय लास
सुख दुख अभिनय, हे !

पावन सुर वारि निखर
उर में स्वर्णिम रव भर
भू रज रखते उर्वर,
जड़ चित् परिणय हे !

केवल, भास्वर, अमेय,
ध्यानावस्थित अजेय,
जीवन के चरम ध्येय
चिन्मय, तन्मय हे !

हरित अवनि भरित अंक,
रहस कलामय मयंक,
काल व्याल से निशंक
मृत्युंजय, जय हे !

उदित कौन परम लक्ष्य
मनश्चक्षु के समक्ष ?
ऊर्ध्व प्राण मौन वक्ष,
सुर नर विस्मय हे !

[स्तवन के उपरात देवगणों का संवाद]

देव

निभृत याम यह मध्य निशा का, गुह्य तमसमय,
गहन अचेतन मन सा, रहस मौन से मुखरित,—
भूत निशा ही देव जागरण की वेला भी !
अतल मूक भय नीचे, ऊपर नीरव विस्मय,
महा प्रकृति विश्राम कर रही स्वप्न-कक्ष में,—
रज सत तम हों लीन आत्म-विस्मृति के पट में !
कैसा निविड़ तिमिर छाया यह, महा दिशा के
केशजाल सा महाकाल के वक्षःस्थल पर
गाढ़ लालसाओं के आवर्तों मे लहरा,—
सृजन हर्ष के प्रीति पाश में बँधे हुए दो !
दिव्य तमस यह दिव्य विभा में होगा वितरित
दीपित कर भय विस्मय को आशा प्रतीति से !

देवी

शुक्ल पक्ष : नवमी के शशि का सौम्य पार्श्व मुख
मौन मधुरिमा, आभिजात्य गरिमा में मंडित,
नीरव सम्मोहन बरसाता अंतरिक्ष से
अन्धकार के निखिल जगत का केन्द्र विन्दु बन,—
अंतर्मन के शात मुकुर सा चिर तेजोमय !
हिम शिखरों पर प्रतिध्वनित शत रजत रश्मियाँ
आत्म चकित आभाओं में प्रतिफलित हो रहीं
दीप्त प्रेरणाओं सी, निःस्वर उन्मेषों सी,—
कँप उठती हों कोटि तड़ित् हर्षातिरेक से !
स्वतः स्फुरित जल उठतीं जगमग वन ओषधियाँ
विना पँखड़ियों के पुष्पों सी शत वर्णों मे,
इंद्रधनुष-पंखों में उड़ कर स्वप्न दूत नव
विचरण करते अंतश्चेतन मनोभूमि मे,—
अद्भुत वातावरण उपस्थित रहस सृजन का !

देव

पतझर मधु का संधिकाल यह : झर झर पड़ते
पीले पत्रों के मर्मर क्षण, उर क्रंदन से,
प्राण वायु का मलय स्पर्श पा; गत स्मृतियों के
जीर्ण भार से हृदय मुक्त कर; मुक्त धरा के
उपचेतन में गोपन अस्फुट पद चापों से
मौन प्रतीक्षा, आशा का संगीत वहन कर!—
निर्जन वन में गूँज उठी लय सृजन व्यथा की!
रजत कुहासे में लिपटी कलियों की स्वर्णिम
अर्ध खुली पलकें हँस उठतीं स्वप्न जगत में,
नाम हीन सौरभ में डूब गया दिगंत मन!
अंतश्चेतन सूक्ष्म भुवन हो रहे पल्लवित,
निकट संक्रमण-वेला भू मानस विकास की!

देवी

अधिमानस का शैल खड़ा जाज्वल्य, स्वप्न स्मित,
यशःकाय चैतन्य का अजर : अंतर्मन का
सार तत्व : मानव संस्कृति का अमर दाय-धन!
जिसके शिखरों पर ऊर्ध्वाकाशों से झर झर
शत शत रत्न छटाएँ छहरातीं प्रकाश की,
जन्म अभी ले सका नहीं जो मनोगुहा में!
जन के अंतर्जीवन का इतिहास अलौकिक
पुंजीभूत हुआ इसमें, युग युग में विकसित,—
सूक्ष्म जगत के सोपानों में उठ अंतर्मुख!

देव

आज नवल चेतना शक्तियाँ जन्म ग्रहण कर
ज्योति प्रीति सुषमा की स्वर्णिम निर्झरिणी सी

नव स्वर लय गति में निःस्वर नूपुर झंकृत कर
रश्मि स्फुरित अंतर्नभ से अवतरित हो रही
ध्यान मौन इस तपोभूमि के रजत व्योम में !—
जन श्रद्धा विश्वास, चेतना की साँसों से
जहाँ सत्य-परिणीत पार्वती परमेश्वर से !

देवी

कोटि लक्ष युग बीत गये, जब निस्तल जल से
ज्योति स्तंभ सा निखरा था चैतन्य लोक यह,
शनैः शनैः उठ, ऊर्ध्व भाल पर धारण कर निज
रवि शशि तारा जटित मुकुट स्मित आत्मतेज का !
सामंतों, सम्राटों, धनिकों के युग में बहु
विकसित होता रहा गुह्य अंतःस्थ कूट यह,
मर्म गुंजरित इसकी प्राणों की द्रोणी में
जीवन वैभव रहा झूलता नव शोभा मे !

देव

नया सांस्कृतिक वृत्त उदित हो रहा क्षितिज में
मानव जीवन मन का नव रूपांतर करने,
नव संगति में सँजो परिस्थितियों की भू को,
नवल संतुलन भर बहिरंतर के यथार्थ में !
नवमी का मणि कलश, पूर्ण चैतन्य सुधा से,
स्वप्न द्रवित राका बरसाएगा भविष्य की,
देव दृष्टि अतिक्रम कर चुकी मनुज के मन को,
सक्रिय फिर से दिव्य चेतना, नव्य संचरण
गुहा बद्ध ज्योतिर्निर्झर सा युग-सचेष्ट अब,
जन भू को मज्जित करने जीवन शोभा में !
देखो, यह, स्वर्दूत उतरते स्वप्न पंख स्मित,
आओ, हम विश्राम करें ध्यानावस्थित हो ?

[देवों का अंतर्धान होना : स्वर्दूतों का प्रवेश]

स्वर्दूती

ओ नभचर, ओ खेचर, क्या स्वप्नों में जाग्रत्
भाव पंख थक गये तुम्हारे ? कहाँ छिपे हो ?

स्वर्दूत

मैं हूँ तो, खेचरी, क्या कहूँ, इन अमरों का
नित नव वैभव देख, दृष्टि अपलक रह जाती !
बरस रही स्वप्नों की जगमग नीरव शोभा
स्वर्णिम पंखड़ियों में झर झर अंतर्नभ से,
चकित रह गये लोचन क्षण भर ज्योति मूढ़ हो !

[प्रसन्न वाद्य संगीत]

यह अमरों का पुण्य धाम, गोपन क्रीडा स्थल,
सूक्ष्म चेतना, सृजन शक्तियों के प्रतीक जो :
आज अतींद्रित मनःस्वर्ग के वासी सुरगण
तपोभूमि में हिमवत् की समवेत हो रहे,
कल्पांतर का रहस समय सन्निकट जानकर,—
हम जिनके नव युग के प्रतिनिधि अग्रदूत हैं !

स्वर्दूती

रहने दो इन प्रतिक्रियावादी देवों को,
मूढ़ मनुज को स्वप्न पलायन सिखलाते जो !
आओ, हम भू भ्रमण करें स्मित छाया पथ से,
जन युग की नव परिणति देखें मनुज लोक में !

स्वर्दूत

क्या ये पौराणिक प्रयोग अब भी संभव है ?

स्वर्दूतो

सब कुछ संभव है प्रगल्भ कल्पना के लिए,
जो विद्युत् गति से, अणु जव से वेगवती है!
नये प्रयोगों का यह वैज्ञानिक युग जग में,
वायुयान से उड़ इस युग का भौतिक मानव
देवयान में विचरण करता अब, अंबर के
मंथित उर को विद्युत् पंखों से विदीर्ण कर!

[शंखध्वनि और मंत्रोच्चार]

यह देखो, स्मित अधित्यका अंतर्मानस की,
ऋषियों के पावन आश्रम सी, मौन ध्यान-रत:
नीवारों के ढेर लगे नीरव चिन्तन से,
लटके धुले कषाय, साधना विरस चित्त से;
लिपे पुते तृण प्रांगण सुथरे सात्विक मन से
यज्ञ धूम, मंत्रोच्चारों से लगते धूमिल!
विचरण करते यहाँ मृगों के छौने अब भी
निज अबोध विस्मित चितवन से देख जगत को;
सींगो से सहला मुनियों के समाधिस्थ तन!
यहाँ आत्म-द्रष्टा तापस बैठे निर्जन में
पद्मासन स्थित, केन्द्रित दृग नासाग्र भाग में,
आरोहण कर रहे ऊर्ध्व श्रेणियाँ मनस की
प्राणों की सतरँग छायाएँ छील कर निखिल,
तन्मय, विश्व विरत, अखंड ब्रह्माड सत्य को
बौने-सा अंगुष्ट मात्र पा, आप्त काम मन!

स्वर्दूत

बौने-सा अंगुष्ठ मात्र? यह विडंबना है
मानव मन की निश्चय, जो अति भाव प्रवण हो,
घट को सागर में मज्जित करने के बदले
सागर को बाँधना चाहता सीमित घट में!

३

अखिल व्याप्त सत्ता के सक्रिय अमर सत्य को
आत्म रूप में परिणत कर निष्क्रिय साक्षीवत् !
हाय, असंभव को संभव करने की निष्फल
चेष्टा में वह इंद्रजाल रचता जाता नव !

स्वर्दूती

यह देखो, वह भू जीवन की घाटी नूतन,
अंधकार था जहाँ घोर, विद्युत् प्रकाश से
जगमग अब वह लगती नव नक्षत्र लोक सी !
यहाँ मनस्वी मानव अथक निरीक्षण पथ से
उद्घाटित कर मूक प्रकृति के रहस वक्ष को,
भौतिक जग के गहन रहस्यों को अधिकृत कर
जुटा रहे मानव भावी के उपादान नव !
किन्तु मृत्यु के दारुण पंखों की छायाएँ
उन्हें ग्रस्त कर रहीं, स्वेद से सिंचित उनके
रचना-श्रम को छीन, अमृत को बदल गरल में !
आज नाश की मुट्ठी में बंदी विवश सृजन !

स्वर्दूत

कहीं नितांत कमी है इस वैज्ञानिक युग में !
एक ओर है महत् मनुज का रचना संचय,
और दूसरी ओर बृहत् खाई अभाव की
मध्य युगों के अभिशापों से भरी भयानक
रूढ़ि रीति शोपण के कर्दम का मुँह बाये,—
मानवता के उर में पड़ी घृणित दरार सी !
अभी बदलना मानव को भीतर बाहर से
अतिक्रम कर अपनी सीमाओं के संकट को !

यह देखो, समतल अपार फैला दृग सम्मुख
जहाँ क्षुब्ध जन-ग्राम, नगर, गृह, हर्म्य, राजपथ
मृण्मय प्रतिमानों से बिखरे विगत युगों के,
उपचेतन के मान-चित्र से अस्तव्यस्त जो :
मनुज सभ्यता की चापों से ध्वनित अवनि पर
ज्यों मिटते पदचिह्न शेष हों काल पथिक के !
यह देशों में खंडित रुद्ध धरा का मानस
आज घृणित स्पर्धाओं, स्वार्थों से आतंकित,—
घनीभूत होती विनाश की भीषण छाया
जन भू के मुख पर विषाद नैराश्य से भरी !
मँडरा रहे विहंग भीम धूमांक क्षितिज में,
लगता हरित प्रसार सिन्धु सा आंदोलित अब,
आवेशों से उद्वेलित उद्भ्रांत नागरिक
नव्य युगांतर का आवाहन करते भू पर !

[गीत]

पुरुष स्वर

एक वृत्त हुआ शेष,
वृत्त शेष, वृत्त शेष !
जन मन में मर्मर भर
नव युग करता प्रवेश !
वृत्त शेष !

स्त्री स्वर

युग विवर्त प्रहर घोर
छाया तम ओर छोर,
दूर अभी दूर भोर
दिक् कंपित भू प्रदेश !
वृत्त शेष !

पुरुष स्वर

पावक का लोक अमर
आकुल करता अंतर,
मृत्यु धूम रहा घहर
गरजता क्षितिज अशेष !
वृत्त शेष !

स्त्री स्वर

निद्रा से पलात नयन
स्मृतियों से उपचेतन,
मानस में युग स्पंदन
प्राणों मे नवोन्मेष !
वृत्त शेष !

पुरुष स्वर

सिहर रहे सूक्ष्म भुवन
जीवन रज नव चेतन,
धरते नव स्वप्न चरण
मिटने को दैन्य क्लेश !
वृत्त शेष !

एक पुरुष

क्रांति, विप्लवों, भू युद्धों, गृह संघर्षों से
त्रस्त, क्षुब्ध, युग-आंदोलित अब धरा चेतना,
भूमि कंप शत दौड़ रहे हों भू मानस में !
कैसा दारुण युग आया निर्मम विनाश का !
ध्वस्त हो रहे संस्कृतियों के सौध रत्न-स्मित,
भू लुंठित स्मृति शिखर ज्योतिमुख आदर्शों के,
नष्ट भ्रष्ट संगठन सचेतन मानव मन के !
धर्म, नीति, आचार गिर रहे औंधे मुँह हो,
हँसमुख तम से भरे अतल कामना-कूप में !
बुद्धि भ्रांत, जीवन के आवेशों से चंचल,
भाग रहा मन बहिर्जगत के जलते मरु में
मृग मरीचिका पीड़ित, चल जल छाया मोहित !

स्त्री स्वर

सिंहासन लुट रहे, टूटते छत्र रत्न प्रभ
ज्वलित तारकों से भू रज पर; रूढ़ि रीति के
दुर्ग ढह रहे,—दिवा भीत विश्वासों के गढ़
झिल्ली झंकृत ! उथल पुथल मच रही धरा के
जीवन प्रांगण में, दारुण झंझा कंपित जो !
धधक रहे उपचेतन के शत ज्वालामुख गिरि
युग युग के आवेशों की लपटें बखेर कर,
भीषण छायाओं से उद्वेलित जन मन अब !

परिवर्तित हो रही वास्तविकता जगती की
नव रूपों मे प्रकट हो रहा जीवन शाश्वत,
विश्व विवर्तन को धारण करने में सक्षम!
शाश्वत तथा अनित्य विरोधी तत्त्व नही दो,
एक सत्य ही विविध स्वरूपों मे अंतर्हित;
परिवर्तन की अविच्छिन्नता ही शाश्वत है,
भूत भविष्यत् वर्तमान हैं गुंफित जिसमे!
जीवन-सक्रिय देश काल मे विस्तृत शाश्वत,
सक्रिय आज परिस्थितियों की रुद्ध चेतना,
बहिर्दृष्टि विज्ञानों से नव बल संचय कर!
बदल रहा जीवन यथार्थ, मानस-पदार्थ अब,—
नव मानव मूल्यों में कुसुमित सामाजिकता
विश्व विपमताओं में नवल समत्व भर रही!

स्त्री स्वर

महत् प्रयोग धरा जीवन में आज हो रहे
एक बृहद् भू भाग रक्त कर्दम से उठकर,
दैन्य, निराशा, क्षुधा, ताप के घृणित नरक के
अंधकार को चीर, विपमता की कारा से
वर्ग मुक्त हो, अमानुपी सत्त्वो स्वार्थों की
रीढ़ चूर्ण कर, मध्ययुगो की जीवन जर्जर
परंपराओं की सीमाएँ छिन्न भिन्न कर,
भू जीवन की मूर्त प्रेरणा से उन्मेपित
श्री समत्व का धरा स्वप्न निर्माण कर रहा
जन बल की संगठित लौह संकल्प शक्ति से!

पुरुष स्वर

युग-युग के शापों तापों से शोषित जनगण
मानवता की लोक कल्पना से अनुप्राणित
मूर्तिमान कर रहे धरा के प्राण-स्वप्न को !
निखर रहे नव रजत सूत्र जन संबंधों के,
नव प्रणालियों के स्वर्णिम ताने-बाने में
नवल लोक-जीवन का पट हो रहा भू ग्रथित !
आदर्शों के दीप्त लोक नव उदित हो रहे,
जन संस्कृति का अरुणोदय प्रासाद उठ रहा
सिन्धु ज्वार सा मुक्त प्राण, रवि शशि ग्रह चुंबित,
खोल दिगंतों के वातायन स्वप्न मंजरित !

[सुख वैभव द्योतक प्राणप्रद वाद्य संगीत]

स्वर्दूती

वह देखो, वह उपत्यका, सौन्दर्य पल्लवित
मौन चांदनी खिली जहाँ जीवन स्वप्नों की !
रजत घंटियों से झंकृत परिवेश सुरक्षित,
सौरभ से श्लथ वायु मनोभावों से गुंजित !
कलाकार हैं जुटे वहाँ विश्रुत युग चेतन
संवेगों के सूक्ष्म कुहासों में जो लिपटे,
नीरव पी फटने का सा मार्दव है मुख पर,
रूप उनींदी पलकें, भावोद्वेलित अंतर,
संभाषण कर रहे सुनो वे, वादों में रत,
आत्म दर्प से घिरे, व्यथा से जग की पीड़ित !

[वाद विवाद का कोलाहल - आकाश में मँडराते हुए तोतों के स्वर,
जो गॉड ब्लेस यू, गॉड ब्लेस यू दुहराते हैं]

स्वर्दूत

ये पश्चिम के मध्यवित्त बौद्धिक संभवतः,
मानववादी परंपरा के नव अधिनायक,
जनवादी तंत्रों के जीवन से विभीत हो
दिवा स्वप्न जो देख रहे पीड़ित पलकों पर,
व्यक्ति मुक्ति के कामी, मोह निशा में निद्रित !
निज कुसुमित बाणों से ये आकर्षित करते
मनोजीवियों के मधु लोलुप मधुकर मन को !

स्वर्दूती

सुनने दो क्या कहते वे युग मंच पर खड़े !

एक बुद्धिजीवी

मित्रो, घोर भयंकर संकट की स्थिति है यह,
मानव संस्कृति यान डूबने को अब निस्तल
जल तल में, जन जीवन ज्वारों से आंदोलित !
यह केवल आर्थिक न राजनीतिक ही संकट,
जीवन के मौलिक प्रतिमानों का संकट यह
आज उपस्थित जो मानव इतिहास में विकट,
वंचित जिससे नहीं कला साहित्य क्षेत्र भी !
सामाजिक होती जाती अब प्रगति भावना,
विविध मतों, वादों, दलगत स्वार्थों में खोयी—
सामाजिकता आज बाहुबल से है शासित !

[उच्छ्वसित होकर]

मँडराते अपरूप विहंगम मुक्त गगन में,
गहराती धूमिल छायाएँ जन धरणी पर,
घोर प्रलय के मेघ उमड़ते अंतरिक्ष में—

[सहसा हतवाक् होना]

दूसरा स्वर

सुनिए, मैं समझाता हूँ इस युग संकट को,
रुद्ध कंठ हो गये सुहृद् भावनावेश से!

[जनता का उच्च हास्य]

दो प्रकार के दारुण संकट आज सामने,
दोनों क्षेत्रों पर हमको संयुक्त जूझना!
एक, जनों को धरा स्वर्ग का आश्वासन दे,
संप्रति भय, अन्याय, यातनाएँ सहने को
बाधित करते उनको बहुविधि आतंकित कर,
बुद्धि विवेक विहीन बना मानसजीवी को,—
क्रूर संघ स्वार्थों का साधन बना मनुज को!
और दूसरे, रिक्त शून्य में पंख मार कर
ऊपर ही ऊपर उड़ते हैं ज्योति अंध हो,
स्वप्न पलायन सिखा जनों को अविज्ञात में!
दिव्य स्वाति के पी-पी रटते प्यासे चातक
भावी के आकाश कुसुम निज चंचु में लिये,
कुम्हला उठते जो जीवन के शीत ताप से!

स्त्री स्वर

सच है, यह दिन के प्रकाश सा स्वयं स्पष्ट है!
ये दोनों ही मूढ़ पलायन वर्तमान से!...
सत्य भविष्यत् नहीं, भूतमय वर्तमान है,
वही भविष्यत् होगा जिसे बनाएँगे हम!
वर्तमान, जो चिर अतीत की परंपरा का
मूर्त रूप है, वही सत्य है, वही प्रगति का,
युग विकास का मापदंड है,—यह अकाट्य है!
जैसा मैंने कहीं पढ़ा,—हम जो जीते हैं,
हम्हीं सत्य हैं! वर्तमान क्षण के पुट में ही
हमें बाँधना होगा जीवन के शाश्वत को!

[करतल ध्वनि]

दूसरा स्वर

यही सत्य है ! सुनो बंधुओ, हमको दोनों
पलायनों से लड़ना होगा, जो भविष्य के
मृग मरु में भटकाते मनको ! मूल प्रगति के
नहीं शुष्क सामाजिकता में, जो दल शासित,
नित नवीन आवेशों से उत्तेजित रहती !
मानव मूल्यों का है स्रोत मनुज के भीतर,
जीवन मर्यादा में विकसित सहज व्यक्ति मे !
अस्थायी हैं जन जीवन के मूल्य वहिर्गत,
सिद्ध कर दिया यह युग के इतिहास ने इधर
यांत्रिक, जन तांत्रिक प्रयोग वहु कर जन मन में !

स्त्री स्वर

अल्प संख्य जो हम संस्कृति के अग्रदूत है,
मानवता के ज्योति शिखा वाहक युग युग के—
गहन समस्या आज हमारे निकट उपस्थित
कैसे हम असुरों के कर से छीन अमृत-घट
देवों के हित करें सुरक्षित, युग गंगा की
सुधा धार को छिपा श्रवण पुट में फिर अपने,
देश-देश का मानस वैभव संचित जिसमें !
यह गौरव अधिकार सदा से रहा हमारा,
हम जो काल प्रवुद्ध, अल्प संख्यक जन जग के,
वहन करें हम धरती पर संदेश स्वर्ग का,
मानव मूल्यों की मर्यादा को विकसित कर !
आज जगत के सम्मुख प्रस्तुत जटिल प्रश्न यह
साध्य और साधन हो कैसे स्वर्ण समन्वित !

पुरुष स्वर

सामूहिकता चूर्ण न कर दे व्यक्ति व्यक्ति की
स्वतंत्रता, संकल्प शक्ति, उन्नत विवेक को,

इससे पहिले हम जो इने गिने मानस हैं
हमें संगठित हो कर अब तत्पर रहना है
निज महान दायित्व के लिए, भू मंगल हित !
हम थोड़े, जो जीवित है, अस्तित्ववान है,
हम्हीं सत्य हैं, शेष व्यर्थ भूभार मात्र हैं,—
क्योंकि नहीं परिचित वे व्यापक भू जीवन से,
विश्व सभ्यता की गति से, मानव संस्कृति की
सूक्ष्म, रहस्यभरी, अति जटिल विकास सरणि से !

प्रथम स्वर

मुझे बोलने दें अब, मैं आश्वस्त हो गया !
मित्रो, मूल्यों का उद्धार हमें करना अब
सुज्ञ व्यक्ति के भीतर उनको स्थापित कर फिर !
हमें विशिष्ट मनुष्य चाहिए, जो प्रतिभा के
पंखों में उड़ सकते मन के अंतर्नभ मे,
स्वर्गंगा सा जहाँ उत्स मानव मूल्यों का
चिर अनादि से अंतर्हित स्मित छाया-पथ में !
अल्प संख्य कुछ ही हम कर सकते अवगाहन
उस अन्तःसलिला धारा मे अंतश्चेतन !—
गुरुतम युग दायित्व हमारे क्षुद्र कंधों पर
आज आ पड़ा, हम जो भू के भारवाह हैं,
निखिल विश्व जीवन, चिन्तन, सौन्दर्य बोध के
निरवधि सागर का मंथन कर, वर्तमान के
क्षीर फेन से मानव मूल्यों की मर्यादा
सार रूप में संचित कर, उस जटिल सत्य को
निज विवेक सम्मत स्वतंत्र संकल्प शक्ति से
सृजन कर्म में परिणत करना हमको शाश्वत !—
विकृत प्रचारों, भावावेशों से हत, मूर्छित
शब्द शक्ति का नवोद्धार कर, नव मूल्यों का
उसे प्रतीक बना, मार्जित रुचि से सँवार कर
मानव के भीतर करना है हमें प्रतिष्ठित !—
बहिरंतर का शुष्क समन्वय भ्रम है केवल !

तीसरा स्वर

कैसा कुसुमित शब्द जाल है! सुंदर वाग्छल!

स्त्री स्वर

कायरता से बचना है प्रतिभावानों को!
कायरता से ग्रस्त रहा इतिहास मनुज का,
कायरता से विमुख हुआ प्रतियुग में मानव
निज अंतर सत्यों से, सत्त्वों की पुकार से!
वर्तमान में दृढ़ रहकर—बहते अतीत का
मूर्त रूप सांप्रत क्षण जो, उसके प्रति जाग्रत,
हमको निज निज स्थिति से पुनः स्वधर्म के लिए
आत्म यज्ञ में पूर्णाहुति देनी है—

तीसरा स्वर

उसको
लोक यज्ञ कह, नव मूल्यों का ज्योतिवाह बन!
सामाजिकता निगल न दे निज वर्तमान के
सत्त्वों के प्रति जाग्रत बौद्धिक वर्ग व्यक्ति को
जो छाया सा काँप रहा जन-भय से मूर्छित,
सावधान रहना है हमको—

एक स्वर

क्या बकते हो?

तीसरा स्वर

सामूहिकता कुचल न दे विस्मृत अतीत की
परंपराओं के हम पथराये ढूहों को,
हमको रहना है सतर्क, संगठित—

स्त्री स्वर

चुप रहो !

तीसरा स्वर

हमने अपने ही भीतर से युग जीवन का
जटिल जाल है बुना अहंता से निज, जिसके
स्वर्णिम मर्यादाओं के तानों बानों में
बंदी हैं हम आप स्वयं, कैसे उठना है जो
क्षण मात्र में,—जिसमें ओसों से दुहरे दल
जगमग कर उठते, शशि किरणों से सम्मोहित !
भाव जगत यह मुक्त व्यक्ति का, सूक्ष्म, गहन, तन,
जो कि असुंदर क्षण को भी सुंदर कर देता
निज प्राणों का रस उड़ेल कर अवचेतन से !
हम, सच, नये प्रयोग कर रहे मानव मन में !

स्त्री स्वर

व्यंग्य मत करो, बंद करो—

एक स्वर

वह सच कहता है !

तीसरा स्वर

यह विशेष अधिकार सदा से रहा हमारा,
हम जो चेतन प्राण, अल्प संख्यक हैं जग के,
हम नव युग संदेश वहन कर अंध धरा में,
चरवाहों से जन भेड़ों को रहे हाँकते,
मानव मूल्यों की नव मर्यादा घोषित कर !
जन धरती में फलती नहीं सुनहली संस्कृति,
वह उगती कुछ बुद्धिजीवियों के मानस में,
केसर की क्यारी हँसती ज्यों सरोवरों में !

एक स्वर

इसे चुप करो !

दूसरा स्वर

इसे पकड़ लो, मत जाने दो !

स्त्री स्वर

यह कोई भेदिया, गुप्तचर लगता निश्चय !

[द्वन्द्व कोलाहल]

स्वर्दूत

यदि फूलों की रक्त शिराएँ उत्तेजित हों
तो उनके मुख चमक सकेंगे कभी सूर्य से ?
वे निरस्त कर पायेंगे धरती के तम को ?
ह्रासोन्मुख संस्कारों का उन्माद मात्र यह !
तर्कजाल से यदि विकसित होता मानव मन
तो न पनपता तरु-जीवन आकाश लता से ?
महत् भाव ही मौन विभूषण मानव मन के,
मुकुट पुष्प ही पहना सकते तरु शिखरों को !

स्वर्दूती

उधर चलें अब खेचर, हिम प्राचीर पार कर,
देखें मलयज सुरभित स्वर्णिम शस्य भूमि को,
सदा विश्व के मुग्ध दृगों की स्वप्न रही जो !

स्वर्दूत

पलक मारते पहुँच गये लो, अपने मन की
अभिमत भू पर,—सफल करो अब अपलक लोचन !

स्वर्दूती

अहा, दीसती शस्य हरित भू मरकत मणि-सी,
मौन गुंजरित से लगते गृह कुंज नगर धन
अमर विश्व गायक की मधुः स्वर लहरी से!
यहां महत् सांस्कृतिक संचरण जन्म ले रहा
मानवीय गरिमा में अतिक्रम कर इस युग को,
हृदय स्पर्श करने में पारस मणि सा सक्षम!—
जो पशु तल से उठा मनुज को मानस तल पर,
आवेशों से सत्य शील संयम के स्तर पर,
सौम्य चेतना से निज विस्मित करता जग को!

स्वर्दूत

स्मृति पट पर नव आभा रेखाओं से अंकित
प्रकट हुआ युग पुरुष अभी इस पुण्य भूमि में,
जो अनादि से देवों को प्रिय रही विश्व में!
जिसकी मनोगुहाएँ जनश्रद्धा से दीपित
जीवन पावन रहा, अविद्या तम से वंचित,
उपचेतन निश्चेतन स्तर तक आलोकित हो!
यहाँ असत् पर सत् की, तम पर सतत ज्योति की
तथा मृत्यु पर विजय हुई अमृतत्व की महत्!—

स्वर्दूती

यहाँ पंक से ज्योति पद्म सा उठकर विहँसा
युग मानव यह लोक सत्य से अनुप्राणित हो,
संयम तप से दीप्त, आत्म स्मित सदाचार की
रजत शिखा कर में धर, बर्बर हिंस्र जगत् को
महत् साध्य अनुरूप दे गया जो नव साधन,
प्रेम अस्त्र से जीत घृणा को,—स्थितप्रज्ञ मन!
युद्धों से हत जर्जर भू पर विश्व श्रेय हित
सबल अहिंसा के प्रयोग कर जाग्रत् सक्रिय
सामूहिक स्तर. पर,—जन मन को द्वेष मुक्त कर.!

आत्म शक्ति से जूझ संगठित पशुबल से वह
प्रवृत्तियों के अंध प्रयोगों की झंझा में
रहा अडिग, चेतन पर्वत सा नैतिक बल का !
सच है, स्वर्णधरा यह उसके अथक यत्न से
युग युग के पाशों से जीवन मुक्त हो पुनः
मानव गौरव वहन कर रही, विश्व मुकुट बन,
कीर्ति स्तंभ सी उठ उसके तप आत्म त्याग की !

स्वर्दूत

यह देखो, नव जीवन सा संचार हो रहा
जन ग्रामों में आज, सृजन कर्मों में रत जो !
नव वसंत में स्वप्न मंजरित कुंजों से हँस
दिक् कुसुमित जन वास उठ रहे, श्री सुख कूजित !
नव आशा आकांक्षा से मुखरित जन मन अब
नव्य चेतना से दीपित, आश्वस्त, उल्लसित !
हृष्ट पुष्ट तन शत कर पद श्रमदान कर रहे
नव जीवन निर्माण हेतु, जन मंगल प्रेरित !

स्वर्दूती

आः, पर निर्मम संस्कारों से पीड़ित यह भू !
करुण दृश्य देखो वह कुंठित मानवता का,
युग युग के शापों विश्वासों से कवलित जन
दैन्य दुःख के पंजर से लगते जीवन-मृत !!
मिट्टी के खँडहरों घरौंदों मे पुंजित वे
रेंग रहे हैं रीढ़ हीन. जीवन कर्दम में !
शीत ताप आँधी पानी में वन-कुसुमों से
क्षण भर खिलकर, कुम्हलाकर, आदिम निसर्ग की
निर्दयता को अर्पित, निष्ठुर नियति पराजित !

स्वर्दूत

पर देखो, मरुथल में हँसमुख हरित द्वीप से
धीरे सोये ग्राम जग रहे जीवन चेतन,

नव शोभा से लिपे पुते जन संस्थानों से,—
सौम्य शील संस्कारों के उर्वर निकुंज ये
लोक चेतना स्पर्शों, यत्नों से अनुप्राणित!
संघ विकेन्द्रित यहाँ हो रहा मानव जीवन
रुचि स्वभाव वैचित्र्य ग्रथित भू के भागों में,
एक मातृ सत्ता के अवयव से ये अगणित,
मधुचक्रों से गुंजित जन जीवन वैभव से!
धन्य अहिंसक भूमि, सत्य पर प्राण प्रतिष्ठित,
मानवीय साधन से सुलभ जहाँ जन मंगल!
विश्व शांति कामी ये जनगण, भू के प्रेमी
सरल संयमित जीवन जिनका श्रम पर निर्भर!
गृह धंधों उद्योगों से, तकुओं चरखों से
बुनते संस्कृत आत्म तुष्ट जन-जीवन पट जो!
लोक जागरण के इनके सात्विक प्रयत्न ये
रजत किरीट बनेंगे निश्चय मानवता के,—
रक्त मुक्त चिर शांति क्रांति के अग्रदूत बन!
प्रतिध्वनित इनके भू मंगल के गीतों से
पुण्य धरा के ग्राम नगर, कानन, नद निर्झर!

[विश्व शांति द्योतक वाद्य संगीत]

मंगल गान

गाओ, जन मंगल हे!
शस्य हरित रहे सतत
स्वर्णिम भू अंचल हे!

शांत रहे नील गगन,
शांत सिंधु वारि गहन,
शांति दूत हों दिशि क्षण,
विश्व शांति शतदल हे!

सृजन कर्म निरत जगत
घृणा द्वेष स्वार्थ विरत,
प्रीति ग्रथित हृदय प्रणत,
पूजित हो श्रम फल हे !

भीति रहित हो जन मन,
वैभव स्मित जग जीवन,
शोभा अपलक लोचन,
कुसुमित दिङ् मंडल हे !

शांत हो समर प्रमाद,
शांत मनुज का विषाद,
शांत निखिल तर्कवाद,
शांति स्वर्ग भूतल हे !

स्वर्दूत

चलो, चलें औद्योगिक केन्द्रों में भी क्षण भर,
घनी बस्तियाँ जहाँ उगलतीं धूम निरंतर
धूमिल कर मानव भावी के घिरे क्षितिज को !
जहाँ उमड़ते विश्वक्रांति के प्रलय बलाहक
महायुद्ध की लपटों पर शत धार बरसने,
तथा शांत करने भू उर की क्रूर अग्नि को !

स्वर्दूती

वह देखो, कुछ विश्रुत देशों के अधिनायक
विश्व शांति के लिए यहाँ समवेत हुए हैं,
चिन्तातुर मुख, कुंचित भ्रू, रेखांकित मस्तक !
सोच रहे मन ही मन, देव, विश्व में संप्रति
शांति हमारे अर्थों में स्थापित हो सकती !
किंतु व्यर्थ सब ! विधि को जाने क्या स्वीकृत है !

कुछ भी निर्णय नहीं कर सका शांति मिलन यह,
जैसा होता आया सदा हुआ वैसा ही!
रिक्त वितंडावादों में सब समय खो गया,
स्वार्थ त्याग करने को कौन यहाँ है उद्यत?
आज गभीर समस्या है भू जन के सम्मुख
युद्ध नहीं तो क्या वे तत्पर शांति के लिए?

स्वर्दूत

पर देखो वह विश्व शांति की रजत शिखा सा
जो सबके सँग है,—हताश वह नहीं तनिक भी!
मध्यमार्ग का पथिक, तटस्थ सदा हिंसा से,
पंचशील का पोषक, सहजीवन का घोषक,
घृणा द्वेष से विमुख, प्रमुख युग द्रष्टा भी जो,
चिन्तन कृश तन, निज महदाकांक्षा सा उन्नत,
चुप न रहेगा वह, जूझेगा धर्म चक्र ले,
जन मंगल का, लोक न्याय का पक्ष ग्रहण कर,
निज नैतिक बल डाल सत्य की विजय के लिए!

स्वर्दूती

सच कहते दिग्भ्रांत जगत का दीप स्तंभ यह,
उसके ऊपर वरद हस्त है लोक पुरुष का!
आह, घोर शिविरों में आज बँटा भू जीवन,
घृणा द्वेष स्पर्धा के दारुण दुर्ग संगठित,
हिंस्र प्रचारों के झींगुर चीत्कार भर रहे
उग्र मतों, कटु तर्कों वादों में झनझन कर!
रंग बदलते रह-रह अवसरवादी गिरगिट,
रटते अर्ध पठित दादुर अपना अपना मत,
उछल घृणित जीवन कर्दम में, कंठ फुलाकर!
आवेशों के भुजग लोट, फुफकारें भर-भर
जन मन को करते विपाक्त फन खोल भयंकर:
रुद्ध वासना के घोंघे, केंचुवे, सरीसृप
रेंग रहे निश्चेतन तम में धरा-नरक के!

रूढ़ि, रीति, आचार, अंधविश्वास अनेकों
पंख छटपटाते विभीत गेंदुर उलूक-से
गहन अँधेरी खोहों में पैठे जन-मन की !
भूख-भूख चिल्लाते कँपते जीवन पंजर,
प्यास प्यास, स्मर दग्ध, स्नायुओं के तृण पिंजर,
महाहास में जीवन तम का भार ढो रहा
पशुओं के स्तर पर प्रवृत्तिजीवी मानव गिर !!

स्वर्दूत

अह, मन में अवसाद घिर रहा तम-कपाट सा
युग मानव की अंध नियति का दृश्य देख कर !
यह देखो, कँप-कँप उठता ध्वनि मृदु दिगंतर
विद्युत् आघातों से ! विकट प्रयोग हो रहे
पृथ्वी पर जीवन नाशक परमाणु शक्ति के !
सेनाओं का तुमुल घोष सुन पड़ता तुमको ?
लौह पगों से हिल-हिल उठता त्रस्त धरातल,
प्रतिध्वनित हो रही मृत्यु की चाप दिशा में,
भीषण रण यानों से मथित उदर गगन का,
उगल रहा संहार अग्नि वमनों का कटु विष,
मृत्यु धूल उड़ रही धरा में विद्युत् सक्रिय !
महाप्रलय की दारुण छायाएँ मँडराती
अँधियाली के आवर्तों में लोट धरा पर,
विश्वयुद्ध की विकट घोषणा फटने को अब
विस्फोटक सी, रुद्ध श्वास दानव के मुँह से !
चलो, लौट हम चलें सुरों की छाया में फिर,
देखें, कोई महत् कर्म हो जन्म ले रहा
मानवता के संरक्षण हित देव लोक में !

[नवीन जागरण सूचक वाद्य संगीत]

अहा, मनस्तुरगों पर चढ़ कर हम देवों की
तपोभूमि में पहुँच गये फिर शुभ्र शांतिमय !

पौ फट चुकी ! सुनहला क्षण युग की द्वाभा का
मोहित करता चित्त, रुपहली झंकारों की
स्वर-संगति में सूक्ष्म चेतनातप सा गुंफित !
मौन लालिमा लोक रक्त शतदल सा प्रहसित
खोल रहा दल पर दल,—निखिल दिगंत पल्लवित !
ज्वलित प्रवालों के पर्वत से खड़े हिम शिखर !
रक्त पीत सित नील कमल जग स्वप्न वृंत पर
सस्मित पलकें खोल रहे निज अर्ध निमीलित !
जाग रहे फूलों के वक्षोजों पर सोये
प्रेम मुग्ध बंदी मधुकर, उन्मन गुंजन भर !
पारिजात मंदार लताएँ लगीं सिहरने
मुग्धाओं सी हरि चंदन तरुओं से लिपटीं,—
खिलने लगे अशोक पदाघातों की स्मृति से,
देवदारु के शिखर हो उठे, लो, स्वर्णप्रभ !
निश्चय देवों के सँग रहता स्वर्ग निरंतर
तपोभूमि को सृजन भूमि में बदल अलौकिक !
सुनो, जागरण गीत गा रहे वैतालिक सुर,
कमलों की अंजलि भर, जो प्रतिमान सृष्टि के !

[प्रभात वादित्र संगीत तथा सहगान]

रक्त कमल, श्वेत कमल
खुले ज्योति पलक नवल !

रक्त कमल जीवन स्मित,
श्वेत कमल शांति जनित,
खोल रहे रश्मि स्फुरित
मानस में ज्वाला दल !

नील कमल श्रद्धा नत,
स्वर्ण कमल भक्ति प्रणत,
कर्दम में खिले सतत,
प्रीति मधुर अंतस्तल !

सृजन प्राण वह, निखिल असंभव संभव उसको !
सुनो, ध्यान से सुनो, स्वगत भाषण करता वह
अर्ध-स्वरों में;—आत्म व्यथित; स्वप्नों से पीड़ित !

[भावोद्वेलन सूचक वादित्र संगीत]

क्रांत द्रष्टा

व्यक्ति समाज, समाज व्यक्ति,—कैसी विडंबना !
साध्य प्रथम या साधन,—कैसा तर्क वृत्त है !
अनेकता में एक, एकता में अनेकता,—
बाहर भीतर,—शब्द जाल सब, केवल वाग्छल !
यान्त्रिक बौद्धिक तत्त्व, रिक्त दर्शन के रूपक,
भ्रांत बुद्धि की प्रेत समस्याएँ मानव कृत,
जो अरण्य रोदन करतीं युग के मानस में,
निर्जन खँडहर में झिल्ली सी झींख झींख कर !

सत्य एक है,—व्यक्ति समाज, अनेक एक, जड़
चेतन, बाहर भीतर सब जिस पर अवलंबित !
आवर्तन गति से विरोध जग के अनुप्राणित,
विश्व संचरण जीवन का वैषम्य संतुलित !

स्वर्दूत

मानस मंथन चलता युग मानव के भीतर !

क्रांत द्रष्टा

देख रहा मैं, बरफ बन गया, बरफ बन गया !
बरफ बन गया पथराकर, जमकर, युग युग का
मानव का चैतन्य-शिखर—नीरव, एकाकी,
निष्क्रिय, नीरस, जीवन-मृत – सब बरफ बन गया !!
राख मात्र जड़, शीतल,—ताप प्रकाश नहीं कुछ,
ठंढे, बुझे हुए अंगारों में प्राणों का
ताप नहीं, मन का जीवंत प्रकाश नहीं अब !

चट्टानों पर चट्टानें सोयी शतियों की,
जमे फलक पर फलक शवों-से श्वेत रक्त के,
अट्टहास भरते जो निःस्वर खीस काढ़ कर
महाकाय कंकालों के अवशेष पुरातन !
चमक-चमक चिल्ला उठतीं किरणें प्रकाश की
सतरंगे छायाभासों की चकाचौंध में,
प्रतिध्वनित हो मनःशिलाओं पर चिर निद्रित !

स्वर्दूती

आत्म विघातक देन रिक्त थोथे दर्शन की !

क्रांत द्रष्टा

राग विरत, निर्वाण शून्य का मूर्त रूप यह,
निरासक्त, निश्चेष्ट, शांति का स्तूप सा खड़ा,
जीवन प्रत्याख्यानों के क्षण अस्थि सौध सा,
नेति नेति का, आत्म निषेधों का दुर्गम गढ़ !
सूख गये प्रेरणा स्रोत बाहर भीतर के
शीतल, हिम शीतल जीवन की जड़ समाधि यह !
स्पंद शून्य भैरव नीरवता महाशून्य की
घेरे इसको महामृत्यु के बृहत् पंख सी !
रिक्त ज्योति बन हाय, जल गया जन धरणी का
रूप रंग रस स्पर्श मुखर जीवन उर्वर मन,—
प्राणों के सौरभ पंखों मे मर्म गुंजरित !!

स्वर्दूत

मध्य युगों के जड़ निषेध, जीवन वर्जन ने
कुंठित कर दी मुक्त प्रगति मानव विकास की !

क्रांत द्रष्टा

विखर शिखर पर जाती जीवन स्वर्णिम किरणें,
मरु की सूनी कँपती निर्जल छायाओं सी,

हँसती यहाँ न प्राणों की मर्मर हरियाली
लोट रुपहली लहरों में धरती की रज पर !
प्रणय गीत गाती न मधुकरी, मधु अधरों से
मुकुलों का मुख चूम, झूम गुंजित पंखों में,
कूक न पाती पिकी मंजरित डालों पर उड़
सृजन प्रेरणा शून्य, अमूर्त विदेह लोक में !!

स्वर्दूती

विद्या और अविद्या में संतुलन खो गया !

[भावोद्दीपक वादित्र संगीत]

क्रांत द्रष्टा

आह, इसे प्राणों का स्पंदित ताप चाहिए,
जीने को जन-मन का भावोच्छ्वास चाहिए,
हरित-प्राण उल्लास से रहित इस युग-युग के
पतझारों के निर्जन, करुण, कराल ठूँठ को
गंध गुंजरित, रस कुसुमित मधुमास चाहिए !
गला सके जो इसके भस्मावृत तुषार को,
मिटा सके भीषण विराग, भारी विषाद को,
आलोकित कर सके घोर नैराश्य तिमिर को,
जकड़े है जो इसे श्वेत कंकाल हास्य से !!
हाय, खो गया शुभ्र तमस में धरा शिखर उठ,
हाय, सो गया शून्य अतंद्रा में जाग्रत् मन,
भटक गये बीहड़ मरुपथ में चरण बुद्धि के,
देशकाल से परे, नास्ति में, मन के लोचन
स्वप्नहीन तंद्रा में कब खुल गये निर्निमिष,—
ध्यानावस्थित, स्थिर, निष्कंप, अरूप प्रताड़ित !!
आत्म नग्न नर, रिक्त देह मन के वैभव से,
अम्ल धौत पट सा, – धुल गये प्रकृति के सब रँग !

[निर्जन विषादपूर्ण वादित्र संगीत]

स्वर्दूत

बौद्धिक मरु में लुप्त हो गया उत्स भाव का !

क्रांत द्रष्टा

इसे इंद्रियों के स्वर्णिम पट में लिपटाओ
रूप गंध रस से झंकृत भूषण पहनाओ, ··
इसे खुले द्वारों से, भाव पर्गों से गुंजित,
जन भू के विस्तृत पथ पर चलना सिखलाओ !
इसे ऊर्ध्व नभ के प्रकाश को आत्मसात् कर
जन भू जीवन मे मूर्तित करना बतलाओ !···
जिससे फिर चल सके अचल, स्वर्णिम स्रोतों मे
झर झर कर वह सके वेग से, नव गति पाकर,
शोभा में हो द्रवित मूक प्राणो की जडिमा,
लोट लिपट भू-रज मे हो नव भाव प्ररोहित !

[जीवनोल्लास सूचक वादित्र संगीत]

स्वर्दूती

महत् समन्वय आज चाहिए युग मानव को
देव मनुज पशु जिसमें हो अंतः संयोजित !

क्रांत द्रष्टा

देख रहा मैं खड़ा धरा चेतना शिखर पर
युग प्रभात नव जन्म ले रहा विश्व क्षितिज में,
स्वर्ण-शुभ्र धर रश्मि-मुकुट भू-स्वर्ग भाल पर !···
युग-युग से स्तंभित, निरुद्ध, आत्मस्थ, स्वार्थरत
मानव के अध्यात्म जाड्य की ज्योति मुग्ध कर !

द्रवित हो रहा शतियों का चैतन्य सनातन
विरह मूढ़ जो रहा वियुक्त धरा मे होकर,
जीवन से ऊपर उठ मन के अहं शूल पर !···

फूट रहे शत रंग निकल प्राणों में मुखरित
धरती को निज प्रीति रचित बाँहों में भरने !

शांत हो रहे मानव के अभिशाप युगों के,
पुनः मिल रहे बिछुड़े जड़ चेतन, जीवन मन,
मानव की आत्मा में नव प्राणों से स्पंदित !
एक विश्व-जन-जीवन निश्चय,—वसुंधरा ही
मनुज सत्य की अमर मूर्ति, जीवित प्रतीक है…
अमित चराचरमयि जो, शाश्वत जीवनमयि जो !
एक छोर चैतन्य निरंतन, रश्मि पंख स्मित,
भावों का सतरँग प्रकाश बरसाता अविरत,

शुभ्र दूसरा छोर, अकूल अतल जड़ तम है,
धारण करता जो अपने अधिकार गर्भ में
जन्म मरण, भव जीवन क्रम, सुख-दुख के स्पंदन !
देख रहा मैं, मूक धरा के अतल गर्भ से
अग्नि स्तंभ उठ रहा तप्त हेमाभ शैल सा,—
महा आगमन का सूचक यह ज्योति पंख क्षण !

[युगान्तर सूचक मधुर भीषण वादित्र संगीत]

स्वर्दूत

निश्चय, यह मानव भविष्य द्रष्टा नव युग कवि,
भूत भविष्यत् के पुलिनों पर बाँध रहा जो
स्वप्न पग ध्वनित भाव सेतु, शत इंद्र धनुष स्मित,—
गरज रहा नीचे उद्वेलित जन युग सागर !

[तीव्रतर वादित्र संगीत]

स्वर्दूती

वह देखो, वह झंझा रथ पर चढ़ कर आता
नव युग का मानव, प्रदीप्त जीवन पर्वत सा,
धरा पंक को दग्ध, मनोनभ को दीपित कर !

[दूर आँधी तूफान के उठने का शब्द]

एक देव

कौन आ रहा वह भीषण सुंदर, भुवनों को
अपनी दुर्धर पदचापों से कंपित करता;
झंझा सा, जन मन में भैरव मर्मर रव भर
भू समुद्र को हिल्लोलित, भय मंथित करता!
क्या यह महा प्रलय, कि प्रभंजन महानाश का?
जन धरणी को धरने आया महाकाल या?
दौड़ रहे उनचास पवन, कँपते मानो भुवन,
निश्चय, यह नव कल्पांतर, यह महा युगांतर!
नया सृजन आ रहा पूर्व के स्वर्णिम रथ पर
अग्नि पुरुष यह, प्राण पुरुष यह, लोक पुरुष यह!

कुछ देव

आओ हे, आओ, अभिवादन, शत अभिवादन!

स्वर्दूत

शांत हो गया क्रुद्ध वेग स्वागत नत होते!

[रथचक्रों के आगमन का रव]

देवी

कौन, कौन तुम तप्त स्वर्ण से दारुण सुंदर,
धरा गर्भ के गुह्य तमस से प्रकट सूर्य से?
मरुतों के तुरगों पर चढ़, मर्मर हर् हर् भर,
जन मन को करते आंदोलित, सिंधु उच्छ्वसित?
जीवन क्रंदन में वज उठता नया गान अब,
मन की मूर्छा में जग पड़ती नयी चेतना,
प्राणों के अवचेतन तम में धँसी ज्योति नव,
क्षुब्ध स्नायुओं के दीपन में रजत शांति सी!…
शून्य निराशा में आशा, संशय में आस्था
अविनय में श्रद्धा, सम्मान उपेक्षा पट में,
संघर्षों में जय, संकल्प अहंता में अय
छिपा प्रलय में सृजन, घोर तम में प्रकाश नव!
हाय, कौन तुम विद्रोही जन के ईश्वर से!…
उलट पलट कर दिया निखिल जीवन क्रम तुमने!

सौवर्ण

[आत्म विश्वास भरा सौम्य स्वर]

मैं हूँ वह सौवर्ण, लोक जीवन का प्रतिनिधि!
नव मानव मैं, नव जीवन गरिमा में मंडित,
युग मानस का पद्म, खिला जो धरा पंक में,
जड़ चेतन जिसमें सजीव सौंदर्य संतुलित!…

प्रथम एक, अविभक्त सत्य मैं, फिर जड़ चेतन!
मैं ही मूर्त प्रकाश, सूक्ष्म औ' स्थूल जगत के
सतरँग छायातप में विकसित! मर्त्य अमर मैं,
जिसके अंतर में भविष्य के शत स्वर्णिम युग
नव जीवन की शोभा में सागर-से स्पंदित,
विश्व चेतना से मेरी अहरह अनुप्राणित!
मैं हूँ श्रद्धा का भविष्य, जो व्यक्त जगत के
काल ग्रसित, खंडित मानों के भूत भविष्यत्
वर्तमान को अतिक्रम कर, उनमें प्रविष्ट हो,
विकसित करता अग जग को नव सीमाओं में!
मैं ही वह निरपेक्ष, विश्व सापेक्षों में जो
अभिव्यक्त हो, जग जीवन मन के मूल्यों में,—
उनके संक्रमणों में,' 'उदय, विकास, ह्रास में,'''
उनके भीतर स्थित, निरपेक्ष बना रहता नित!
क्या आश्चर्य कि तुम्हें कल्पनावत् लगता हूँ!

स्वर्दूती

कला सृष्टि यह,'''महत् कल्पना जन भविष्य की!

सौवर्ण

ऊपर मैं रवाभा सा छहरा देवों में,
सृजन चेतना के प्रतीक जो सूक्ष्म अगोचर,
नीचे मानव जग में मूर्तित, प्रिय जो मुझको,
देवों को कर आत्मसात् विकसित होता जो!
तुम दीपक से भिन्न समझते दीप शिखा को?
विस्मय करते कैसे आँधी तूफानों में
जीवित रहती है वह? मैं तूफानों ही में
जलने वाली अमर ज्योति हूँ!'''मैं रहस्य हूँ!
भंगुर मिट्टी के प्रदीप ही में पलता हूँ।
झंझा के पंखों पर चढ़ जीवन ज्वाला सा
सँग सँग फिरता मैं अंबर, सागर, कानन में!

भूत भविष्यत् वर्तमान मुझमें ही जीवित,
विश्व समन्वय से मैं महत्... समष्टि प्रेरणा,
सृजन प्रेरणा,... मूर्तिमान जीवन स्पंदन में !

स्वर्दूती

लोक काव्य यह, जिसमें सूक्ष्म मूर्त हो उठता !

सौवर्ण

ध्यान मौन तुम, शून्य अतीन्द्रिय नभ में खोये,
मुझे खोजते जीवन से निष्क्रिय निरीह हो ?...
वहाँ नहीं मैं,... अतिवादों से दूर, निरंतर
जग जीवन ही में निविष्ट, अति से अतितम हूँ !
आत्म ज्योति औ' भूत तमस से अंध, उभय ही
एक समान मुझे हैं,... ज्योति-तमस से पर मैं
स्वयं सत्य हूँ !... ज्योति-तमसमय, जड़-चेतनमय,
मन जीवनमय, मुझमें जो वागर्थ से जुड़े !

स्वर्दूती

देव काव्य यह, जिसमें तत्व निहित रहता नित !

सौवर्ण

ओ प्रकाश के पागल प्रेमी, दग्ध पंख
शिशु-शलभ, करोगे क्या प्रकाश, छू के प्रकाश से ?
क्या प्रकाश करता जो होती नहीं मातृ भू ?
किरणों में हँसने को सतरँग फूल न होते,
उन्हें चूमने को न मचलतीं चपल लहरियाँ,
और साँस लेती न कहीं होती हरीतिमा ?
होता तमाकाश शून्य, जलता जीवन मरु...
होता एकाकी प्रकाश, कुछ और न होता !!
मैं प्रकाश का हूँ प्रकाश, मैं अंधकार का
अंधकार हूँ !... मैं, जो जन भू जीवनमय हूँ !

मेरे लिए प्रकाश-तमस हैं, मैं ही जीवित
सार्थकता हूँ सत्ता के निष्क्रिय छोरों की!
मैं ही शाश्वत रस समुद्र, अमृतत्व तत्त्व हूँ,···
जीवन सत्य अमर,···जड़ चेतन उपादान भर!
ओ ईश्वर के विरही, मैं संयुक्त सभी से,
कैसा कल्पित विरह तुम्हारा तुहिन अश्रुमय?
चिर साध्वी जन प्रकृति, विरहिणी हो सकती वह?—
नित नव नव रूपों में जो आलिंगित मुझसे!
तुम को ईश्वर पर विश्वास नहीं? जो नित नव
सत्यों में विकसित होता जग जीवन क्रम में!
तुम केवल विधिवत् सत्कर्म किये जाते हो
जो अकर्म औ' असत्कर्म बन गये युगों से!!

स्वर्दूती

अमर काव्य यह परंपरा को करता विकसित!

सौवर्ण

प्राण हरित जीवन पादप मैं,···मूल सत्य में;
सुदृढ़ स्कंध संयम, संकल्प महत् शाखाएँ,
मानस विकसित सुमन, सूक्ष्म स्मित भाव रंग दल,
सुरभि चेतना, सुख विकास, मधु प्रेम मर्म धन,···
आशाऽकांक्षा के मधुपों से शाश्वत गुंजित!
नव युग में मैं जन मानवता का प्रतीक हूँ,
ज्योति प्रीति, आनंद मधुरिमा में नव स्पंदित!
नव संस्कृति का सारथि, नव आध्यात्मिकता मैं,
नव विकसित इंद्रिय, मन प्राणों से अतिचेतन!
तत्त्व रूप में नहीं समझ पाते जो मुझको,
वे मूर्तित देखें मुझको नव जन जीवन में!
युग युग के जीवन का दर्शन सुलभ उठा अब
नव शोभा लपटों में,···जाग्रत् जन समूह जो!
मैं भावी चैतन्य, मूर्त कल्पना गात्र में,

मैं धन मानव,…सबसे श्रेष्ठ, जन श्रेयस्कर जो
उसे बाँधने आया भू जीवन अंचल में,
शोषण, दुख, अन्याय, दैन्य का भूमि भार हर!
शतियों के पतझारों में भरने आया मैं
नव मधु की गुंजरित मधुरिमा ज्वाल पल्लवित!
सप्त चेतना भुवनों के अक्षय वैभव को
लोक चेतना में करने आया हूँ मूर्तित!
एक धरा जीवन में जन के मन प्राणों के
रुचि स्वभाव वैचित्र्यों कर नव संयोजित,
युग युग के मानव संचय का समीकरण कर
नव मानवता में करने आया हूँ वितरित!
स्वप्न गवाक्षों से दीपित अब मुक्त काल क्षण,
धरा वक्ष में देश खंड हों रहे समन्वित,
युग युग से विच्छिन्न चेतना के प्रकाश को
मैं जीवन सूत्रों में करने आया गुंफित!

स्वर्दूत

अजर काव्य यह, इसमें जन भावी अंतर्हित!

सौवर्ण

आज धरा जीवन अंचल में बँधी प्रेरणा,
आज जनों के साथ प्राणप्रद सृजन शक्ति नव,
अब न कला के स्वप्न निकुंजों में पल सकते,
अगणित वक्षों में अब स्पंदित नयी चेतना!
नव जीवन सौंदर्य उग रहा जन धरणी में,
मनुष्यत्व की फसल उगलती हँसती भू रज,
नव मूल्यों की स्वर्णिम मंजरियों से भूषित!

[झंझा रथ में प्रस्थान : नव वसंतागम का वादित्र संगीत]

स्वर्दूती

विस्मय-स्तंभित से लगते निष्प्रभ हो सुरगण,
नवोन्मेष उद्वेलित, गोपन संभाषण रत!

एक देव

धरा गर्भ से प्रकट, धरा में समा गया, लो,
वह तेजोमय स्वर्ण पुरुष फिर, शत सूर्योज्ज्वल,
स्वर्णिम पावक से दीपित कर देवों का मन !
बरस रहे शत निःस्वर निर्झर अधिमानस से
उज्ज्वल तप्त हिरण्य द्रवित, नव युग प्रभात में—
उतर रही हो स्वर्गंगा आलोक वारि स्मित,
स्वर्ण नूपुरों से मुखरित सुर बालाओं के—
जीवन शोभा से उर्वर करने जन भू को !

देवी

चलो, चलें हम धरा स्वर्ग में, जन मानव बन,
छोड़ त्रिदिव की मानस रति प्रिय भोग भूमि को
प्रगति विमुख जो, चिर निष्क्रिय, वंचित विकास से !
मर्त्य लोक ही निश्चय भावी का नंदन वन !

[देवों का अवतरण सूचक वादित्र संगीत]

स्वर्दूती

स्वर्ण पृष्ठ खुल रहा लोक जीवन का भू पर,
जन मानवता प्राण प्रेरणा से हिल्लोलित !
नव जन ग्रामों, नव जन नगरों में सुख मुखरित
नव युग अरुणोदय हँसता नव आशा दीपित !
स्वर्ण घंटियाँ सी बज उठतीं रजत अनिल में,
मुग्ध क्षितिज वातायन लगते स्वप्न मंजरित,
स्वर्ग दूत सा उतर रहा नव युग प्रभात अब
शुभ्र लालिमा भरा रश्मियों के निर्झर सा,...
श्वेत कपोतों से अंबर पथ में अभिनंदित !
हर्ष मुखर खग मिथुन जग रहे ज्योति नीड़ में,
रत्न मर्मरित से लगते तरुओं के पल्लव !

द्रवित हो उठी शून्य नीलिमा अपलक नभ की
देख धरा मुख, शत स्वच्छायाओं में कँप !
निखिल विश्व आनंद छंद सा प्राण तरंगित,
अगणित स्वर लय संगतियों में जीवन मुखरित !

स्वर्दूत

दैन्य दुःख मिट गये, छँट गये धूमिल पर्वत
घृणा द्वेष स्पर्धा के, भय संशय पीड़न के,
जन शोषण, अन्याय, अनय से मुक्त धरा पर
एक छत्र अब शांति, साम्य, स्वातंत्र्य प्रतिष्ठित !
शुभ्र शांति, जो सर्व श्रेष्ठ गति मानव मन की,
जिसके स्वर्णिम पंखों में जन भू का जीवन
सृजन हर्ष से स्पंदित, सतरँग श्री शोभा में
विचरण करता बाधा बंधन हीन, विश्व में !
नव युग उत्सव मना रहे उल्लसित धरा जन
प्रीति सूत्र में गुँथे, मंजरित तन मन लोचन,
नव वसंत में नव जीवन मधु संचय करने !

समवेत गीत

युग प्रभात नव, युग वसंत नव,
जन भू का अभिनंदन गायें !

कितने हृदयों के मृदु स्पंदन
कितनों के मधु हास, अश्रु कण
कब से मधु सुमनों में संचित,
आओ इनके हार बनायें !

आकुल उच्छ्वासों की सौरभ,
उत्सुक अपलक नयनों के नभ
इन नीरव मुकुलों में मूर्तित,
स्मृतियों की माला पहनायें !

युग युग की वह मौन प्रतीक्षा
मर्म गुंजरित जीवन दीक्षा,
सफल आज, जन भू में अर्जित,
इन्हें स्नेह से हृदय लगायें !

ये प्रतीक जन हृदय मिलन के,
जन पूजन, जन आराधन के,
भाव युगों के इनमें विकसित,
इन फूलों को शीश चढ़ायें !



स्वप्न और सत्य

[आदर्श और वास्तविकता के बीच युग संघर्ष द्योतक काव्य रूपक]

कलाकार

दो मित्र

तथा चेतनाएँ

प्रथम दृश्य

[संध्या का समय : एक तरुण कलाकार का रंग कक्ष कलाकार दीवारपर लगी काली तख्ती पर रंगीन खड़ियों मे पतझर का रेखा-चित्र बना रहा है और बीच-बीच में, खिड़की से बाहर की ओर देखता हुआ, मंद स्वर मे गुनगुना रहा है ।]

[गीत]

मर्मर भरी वनाली !
नग्न गात, हिम भग्न पात,
सूनी जीवन तरु डाली !

मृत्यु भीत क्रंदन भर कातर
जीवन का संचय पड़ता झर,
भटक रही उद्भ्रांत गंध
भू इच्छा सी मतवाली !

मधु के रंग चित्र से सुंदर
रेखाओं का यह ऋतु पंजर
तभी चितेरे ने रख दी निज
स्वप्न तूलि, रँग प्याली !

धूप छाँह से भर मृदु अवयव
हिम से निखर रहा वसंत नव,
कलि किसलय से दृश्य पटी की
शोभा सँजो निराली !

मधु पतझर का मिलन सुहाया
विश्व प्रकृति स्वप्नों की माया,
पीत शिशिर अधरों पर छायी
फिर नव पल्लव लाली !

अँगड़ाई भरती हँस कलियाँ
मुग्ध मधुप करते रँगरलियाँ,
रिक्त पात्र में किसने मोहक
माणिक मदिरा ढाली!

[बाहर देखता हुआ]

कलाकार

पतझर आया, जग जीवन में पतझर आया,
झर झर पड़ता युग युग का मुरझाया वैभव,
मन की ठठरी बाहर अखिल निकल आयी हो!
भावों, तर्क-विचारों की नाड़ियाँ उभर कर
टूँठी, शुष्क टहनियों सी छितरी पड़ती हैं!
प्राण प्रभंजन समुच्छ्वसित सीत्कार छोड़ता,
सिहर सिहर उठता आदोलित जन मन कानन:
प्रलय गीत गा रही चूर्ण पसलियाँ जगत की,
जीर्ण मान्यताएँ पीले पत्तों सी उड़ कर
धूलिसात् हो रही मौन मर्मर क्रंदन भर!
गिर गिर पड़ते नष्ट भ्रष्ट सुख नीड़ अरक्षित,
स्वप्न हिमानी जड़ी हृदय की डाल रुपहली
बिखर बिखर पड़ती निर्जन में अश्रुपात कर!

[मित्रों का प्रवेश]

पहला मित्र

नमस्कार! ...फिर वही प्रकृति की छवि का चित्रण?
तुम्हें धन्य है!

कलाकार

कहीं छोड़ सकते हैं बच्चे!
माँ का अंचल?

पहला मित्र

मौं का अंचल ! ठीक, अभी
यौदिक शिशु ही हो ! (हास्य)
निर्निमेष, भावुक प्रेमी से
मात्र प्रेयसी का प्रिय मुख देखा करते हो,—
मुग्ध यत्न से, जीवन से कर्तव्य विमुख हो !
इस प्रमाद के लिए कभी तुम जन समाज से
शापित होगे !

दूसरा मित्र

(चित्र को देखकर) कैसा मधुर सजीव दृश्य है !
पतझर के सूने पंजर में नव वसंत का
हृदय हो उठा हो स्पंदित, नव भाव उच्छ्वसित !
टेढ़ी मेढ़ी रेखाओं की रंग-पटी से
नव शोभा का क्षितिज झाँकता मर्मर कंपित !
छायातप कँप-कँप उठता मृदु तूलि स्पर्श से !
मुट्ठी भर रेखाओं में निस्तब्ध विजन की
आशाऽकांक्षा गूँज उठी हों, रंग ध्वनित हो !
नव भावों से आंदोलित कृश देह लता सी
मुग्ध वनश्री झूम रही मधु बाहु पाश में !...
रेखाएं ज्यों लय की बहती धाराएं हों ।
कला प्रेरणा कुशल तूलि के संचालन से
मूर्त हो उठी है अवाक् शोभा में अपलक !
मार्मिक कृति है !

कलाकार

(मुग्ध भाव से) मातृ प्रकृति कैसी अद्भुत है !—
सत्य असत् के, घृणा प्रेम के, हास अश्रु के
छायातप से गुंफित है जिसका करुणाचल !
जन्म मरण औ' प्रलय सृजन जिसके आँगन में
आँख मिचौनी खेला करते हैं निशि वासर !

कौन शक्ति वह ? चल चित्रों के सृष्टि जाल को
जिसने दिया उछाल मात्र छायाभासों में !
कौन ज्योति वह ? जिसने वाष्प कणों को रँग कर
इंद्रधनुष वेणी छहरा दी महाशून्य में !
विस्मित हूँ ! नव सृजन स्वप्नमयि कौन चेतना
झांक रही पल्लवित झरोखों से विटपों के ?
तरुवन के हिलते हड्डी के पंजर को छू
फूट रही जो अंग भंगिमा में वसंत की !
कलाकार के लिए, सत्य ही, विश्व प्रकृति यह
निखिल प्रेरणाओं की जननी है रहस्यमय !

पहला मित्र

अभी प्रकृति के बाह्य रूप पर मोहित हो तुम,
मुग्ध यौवना सी जो नित्य बदलती रहती !
लज्जा की लालिमा कपोलों पर रँग प्रतिपल
इंद्रजाल रचती वह नित हावों भावों के !...
डूब मगे उसकी कंपित अंचल छाया में,
उसे अकूल अतल श्यामल जल बिम्ब मान कर !
पलकों से सहला कोमल पल्लव से पदतल,
नव स्वप्नों से नागिन वेणी रहो गूँथते !
शशि किरणों में पिरो सुनहले ओस कणों को
अश्रुहार पहनाते रहो विकंपित उर को !
हृदय रक्त से अंकित कर अपलक शोभा को
छिन्न प्राण तंत्री में रहो विहाग छेड़ते !
तुम्हें ज्ञात है ? आज प्रकृति पर विजय प्राप्त कर
मनु का सुत निर्माण कर रहा नयी सभ्यता !
मानव में केन्द्रित कर श्री सुषमा निसर्ग की
उसे मनुज को सौंप दिया जीवनी शक्ति ने !

दूसरा मित्र

क्षुब्ध मति भ्रम हो गया तुम्हें ! क्यों मातृ प्रकृति का
शाप ले रहे हो तुम सिर पर, पाप वचन कह !

पहला मित्र

तर्क बुद्धि से परिचालित चेतन युग मानव
पाप पुण्य से भीत नहीं—

दूसरा मित्र

क्यों तर्क बुद्धि की
व्यर्थ दुहाई देते हो !···इस युग का मानव
मात्र प्रकृति का दास, इंद्रियों का पूजक है !
वह निसर्ग की स्थूल शक्तियों को अर्जित कर
अपनी अंतर आत्मा पर अधिकार खो चुका !
बाह्य विजय की चकाचौंध से आत्म पराजित
वह विनाश के अंध गर्त की ओर बढ़ रहा !···
विजय प्राप्ति है दूर,—उसे शाश्वत निसर्ग के
नियमों का पालन करना है शुद्ध बुद्धि से !
इसमें ही कल्याण निहित है मनुज जाति का,—
नियमों पर चलना उन पर विजयी होना है !

पहला मित्र

बीत कभी का चुका प्राकृतिक दर्शन का युग
तुम तोते की तरह लगाये हो रट जिसकी !
आज प्रकृति नियमों से नहीं, मनुज इंगित से
संचालित हो रही नियति मानव समाज की !
स्थापित स्वार्थ नियम बनते जाते विधान के,
मुट्ठी भर नर नित्य असंख्य निरीह जनों का
शोषण करते जिन नृशंस नियमों के बल पर !
नियमों पर चलना है आत्म पराजित होना !···
कलाकार को नैतिकता सिखलाते हो तुम ?
शुष्क नियम पालेगा क्या वह आत्म शुद्धि के,
बिना लीक चलने ही में जिसका गौरव है ?

कलाकार

नहीं जानता तर्कवाद, विद्वान् नहीं हूँ,
मैंने सीखा नहीं पहेली कभी बुझाना!
पर जो मन की आँखों को सुंदर लगता है
उससे कैसे आँख चुराऊँ ? जो अंतर के
घटवासी को प्रिय लगता है, कैसे निर्मम
तिरस्कार कर उसे भुलाऊँ ? यह मनुष्य से
संभव है क्या? नहीं,...बड़ी निर्दयता है यह!
मैं क्या करूँ? विवश हूँ, मुझसे न हो सकेगा!
मन तो मेरे हाथ नहीं है, तर्क बुद्धि से
न चल सकूँगा, मुझे भावना ही प्रिय है!...
जो, अनजाने ही मन को मोहित कर लेता है,
चितवन को अनिमेष लूट लेता निज छवि से,
रूप रश्मियों में उलझा पलकों का विस्मय,—
जो प्राणों को पागल कर बरबस भावों के
स्वप्न पाश में बाँध, हृदय तन्मय कर देता,—
मैं उसको ही आँकूँगा निज रंग तूलि से,
वह चाहे कुछ भी हो, मैं यह नहीं जानता!

पहला मित्र

क्या प्रलाप करते हो पागल प्रेमी का सा!...
मानव जगत कहीं सुंदर है प्रकृति जगत से,
क्योंकि अधिक विकसित है वह पुष्पों पशुओं से!
ऊर्ध्व रीढ़ पद दलित कर चुकी जड़ निसर्ग को,
शीश झुकाएगी वह पुनः प्रकृति के सम्मुख?—
जिसे प्रकृति प्रभु मान हर्ष से पूँछ हिलाती
और प्रणत रेंगा करती पैरों के नीचे!
फूलों की रंगीन शिराओं से रहस्यमय
ज्ञानवाहिनी सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं मनुष्य की!
मानव जग में, जनगण जीवन में प्रवेश कर
नयी प्रेरणा तुम्हें मिलेगी कला के लिए,

शक्ति स्फूर्ति आ जाएगी स्वर्णिम तूली में !
मानव के मन को गढ़ना सर्वोच्च कला है !
जन से सहज सहानुभूति ही मनुज हृदय की
सार्थकता है, वही प्रेम की क्षमता भी है !
आओ, देखो आँख खोल कर मनुज जगत को—
कैसा हाहाकार छा रहा आज वहाँ है !

दूसरा मित्र

आंख मूँद कर सोचो, देखो मानव मन को
कैसा हाहाकार छा रहा आज वहाँ है !

पहला मित्र

शोषित कंकालों की भूखी चीत्कारों से
काँप रही है नग्न वास्तविकता जगती की !

दूसरा मित्र

भौतिकता से बुद्धि भ्रांत, जीवन तृष्णा से
पराभूत हो, भूल गया नर आत्म ज्ञान को !

पहला मित्र

एक ओर प्रासाद खड़े है स्वर्ग विचुंबित,
चारों ओर असंख्य घिनौनी झाड़ फूँस की
घीनी झोपड़ियाँ है, पशुओं के विवरों सी,—
घोर विषमता छायी है मानव जीवन में !

दूसरा मित्र

एक ओर आदर्श भ्रष्ट हो रहा मनुज मन
चारों ओर घिरा अछोर अवचेतन का तम,
भाव ग्रंथियाँ सुलझाने में कुंठित भू-जन
और उलझते जाते है वासना पंक में,—
घोर अराजकता है प्राणों के जीवन में !!

पहला मित्र

आज पुनः संगठित हो रहे शोषित पीड़ित,
युग युग के पंजर खँडहर उठ धरा गर्भ से,—
क्रांति दौड़ती दावानल सी, भूमि कंप सी,
महत् वर्ग विस्फोट हो रहा मानव जग में !

दूसरा मित्र

आज पुनः संगठित हो रहा मानव का मन,
नव प्रकाश में दीपित अंतश्चेतन गह्वर,
नव्य चेतना से मधु झंकृत सूक्ष्म शिराएँ,—
रूपांतर अब निकट महत् मानव भावी का !

पहला मित्र

लोक साम्य की वृहद् भावना से प्रेरित हो
सामूहिक निर्माण हेतु अब उत्सुक भू जन !

दूसरा मित्र

विशद विश्व मानवता के भावों से प्रेरित
आध्यात्मिक उन्नयन हेतु आतुर मानव मन !

[वाद विवाद सूचक ध्वनि संगीत प्रभाव]

कलाकार

ऊब गया मन घोर विरोधाभासों को सुन,
क्लांत कल्पना, दौड़ समांतर तथ्यों के सँग !

[अँगड़ाई लेता है]

आऽऽह !

[बाहर से नारे लगाने की आवाज]

(नारे) क्रांति की जय हो ! प्रजातंत्र की जय हो !
लोकतंत्र की जय हो ! जन मंगल की जय हो !

पहला मित्र

सुनो, बंधु, यह जन समुद्र गर्जन भरता है,
प्रतिध्वनित हो रहे मौन वन पर्वत कंदर,
जाग रहे चिर निद्रित भू के निःस्वर गह्वर,
लोकोत्सव यह, महत् प्रदर्शन लोक पर्व का!

[दूसरे मित्र से]

उठो मित्र, त्योहार मनाती जन मानवता,
चलो, सम्मिलित हों हम भी आनंद पर्व में!
कलाकार की पलकें डूब रहीं निद्रा में,
उसको सोने दो अपने कल्पना नीड़ में
स्वप्नों की परियों के सँग, भावना मग्न हो!

दूसरा मित्र

चलता हूँ पर, लोक पर्व में न जा सकूँगा!
इन नारों से कहीं तीव्र झंकार कर्मी से
मेरे अंतर में उठती है!...निर्जन में जा
खोज करूँगा गहन मर्म जिज्ञासा की अब!

[दोनों मित्रों का प्रस्थान]

(नारे) *नये राष्ट्र की जय हो! लोकतंत्र की जय हो!*

कलाकार

शिथिल पड़ गयी देह, व्यथित हो उठे प्राण मन
नीरस तर्कों के बोझिल शब्दाडंबर से,
इनसे कहीं प्रेरणाप्रद लगते ये नारे...
प्राण शक्ति का स्पंदन कंपन जिनमें जन का!

[भाव मग्न होकर]

एक और चेतना शक्ति है, जो मानव के
अंतरतम में अंतर्हित है, ज्योति प्रीतिमय:

जो विकास पथ में संभवतः, जिसके धूमिल
चरण चिह्न भू पथ पर छोड़ गये प्रबुद्ध जन!
तर्क बुद्धि, मतवादों से जो कहीं पूर्ण है!
उसकी आभा कभी स्फुरित हो अंतर्नभ में
आलोकित कर देती स्वतः निखिल भेदों को!
स्वप्नमयी वह, सृजनमयी, आनंदमयी वह,
करुणा कोमल, मा की ममता सी मंगलमय,
प्रीति मधुरिमा से भर श्रद्धा मौन हृदय को
दीपित कर देती रहस्य सच सहज बोध से,—
सौ सौ भावों के दल खोल दृगों के सम्मुख!

[अँगड़ाई लेकर]

आह! न जाने किन फूलों की मदिर गंध पी
अलस-श्रांति जृंभा लेती मंथर अंगों में!
क्लांत हो उठा मन,—थोड़ा विश्राम करूँगा,
स्वप्नों की परियों के छायांचल में छिपकर!

[तख्त पर सो जाता है]

स्वप्न दृश्य

एक

[मंद मधुर वादित्र संगीत : कलाकार का भावाक्रांत मन स्वप्नावस्था में अंतर्जगत् के सूक्ष्म प्रसारों में विचरण करता है, जिसे स्वर्ग कहते हैं]

[स्वर्ग चेतना का गीत]

स्वागत, अमरपुरी में आओ!
जीवन स्वप्नों से विभीत हे
तंद्रालस में मत बिलमाओ!

जागो, जागो, दिव्य पाथ हे,
त्यागो भव भय, मुक्त कांत हे,
स्वर्ग शिखर यह शुभ्र शांत हे,
निर्भय, निश्चय, चरण बढ़ाओ!

यह अंतर का सूक्ष्म संगठन,
मन करता आया आरोहण,
तुम जड़ नहीं, अनश्वर, चेतन,
चेतो, मन की भीति भगाओ!

महानंद की उठती लहरी,
पुण्य यहाँ के अक्षय प्रहरी,
जन्म मरण की निद्रा गहरी
छोड़ो, नर जीवन फल पाओ!

क्षणिक अतिथि बन जो तुम आये
तन मन प्राणों से कुम्हलाये,
तो वरदान तुम्हें यदि भाये
भू पर देव-विभव ले जाओ!

[संगीत की झंकारें मन्द पड़ जाती हैं]

कलाकार

[आँखें मलता हुआ]

कैसी स्वर-संगति है इस सुंदर प्रदेश में,...
स्वर्ग लोक है यह क्या, अंतर्मन का दर्पण?
जहाँ मौन संगीत प्रवाहित होता रहता
सूक्ष्म भावना अप्सरियों के पदक्षेप से!
निश्चय, यह मानव जग का प्रतिमान रूप है,—
विगत युगों का भाव विभव है जिसमें संचित!
ये कैसी छायाएँ विचर रहीं अनंत में
दिव्य चेतनाओं सी, स्वप्नों के पंखों पर!
ये कैसे विच्छिन्न हुईं जीवन पदार्थ से!
आत्माएँ हैं ये क्या जो तन में बँधने को
मँडराती उड़ चिद् नभ में निःशब्द अर्थ सी?
अथवा ये चिर रहस शक्तियाँ, मनुज नियति को
संचालित करतीं जो छिप कर स्वर्दूतों सी?
इन्हें कौन परिचालित करता?—गूढ़ प्रश्न है!
संभव, ये अंतर प्रकाश की छायाएँ हों,
धरती की रज बाह्य आवरण भर है जिनकी!
जीवन का बहुमुखी सत्य है एक, अखंडित,
अधः ऊर्ध्व सोपान श्रेणियों में बहु छहरा,
एक दूसरे पर निर्भर है जिनकी सत्ता,—
एकांगी अभिव्यक्ति नहीं श्रेयस्कर इनकी!
मनुज चेतना भटक गयी क्यों मध्य युगों से
भाव लोक में? ऊर्ध्व पंथ क्यों पकड़ा उसने!
स्वप्न लोक में शून्य मुक्ति का अनुभव करने?
मुक्ति रिक्त कल्पना नहीं, वास्तविक सत्य है!
उसे प्रतिष्ठित करना होगा जन समाज में
महत् वास्तविकता में परिणत कर जीवन की!
सूक्ष्म स्वर्ग को भी फिर विकसित होना होगा
जन धरणी पर उतर, मूर्त अवयव धारण कर,—
वह यथार्थता में बँधने को रुका हुआ है!

[वादित्र संगीत के साथ गंभीर मधुर प्रार्थना गान]

यह कैसा उन्मुक्त प्रार्थना गान वह रहा,
निर श्रद्धा विश्वास हो उठे अंतर्मुखरित,
गुह्य अर्थ मंत्रों के स्वतः स्फुरित हो उर में
उद्भासित हो उठे तड़िल्लतिका से दीपित!
यह किन आत्माओं का करुणोज्ज्वल प्रकाश है?
वरदहस्त की छाया कौन किये ये भू पर?
दिव्य महापुरुषों से लगते ये पृथ्वी के!
स्वप्न देखता हूँ मैं क्या? या अति जाग्रत् हूँ!
सुनूँ, धरा के स्वर्गिक प्रतिनिधि क्या कहते हैं?

[छायाओं को संबोधन कर]

अभिवादन करता हूँ, श्रद्धानत मस्तक मैं
जन-भू के स्वप्नों से पीड़ित,—रंग तूलि से
रँगता जो नित धरा चेतना के क्षत पदतल,
उर की करुणा ममता, शोभा सुषमा से भर,—
लोक कला का महदाकांक्षी, नर देवों से
महत् प्रेरणा का अभिलाषी, मर्त्य जीव मैं!

प्रथम छाया

मर्त्य जीव ही नहीं, अमरताऽकांक्षी भी तुम!
हम भी जन भू के अभिभावक, जन सेवक है,—
आत्म मुक्ति पथ त्याग, लोक जीवन वेदी पर
हमने पार्थिव स्वार्थों का बलिदान किया निज!
अब भी हम संघर्षशील है स्वर्ग लोक में
भू जीवन के श्रेय के लिए,—आत्म तेज से
मार्ग प्रकाशित कर जन गण का ध्रुव तारकवत्!

कलाकार

मेरा भी भू पंथ प्रकाशित करें कृपा कर!

प्रथम छाया

सफल मनोरथ हो तुम वत्स, कला जीवन की
मूर्त वास्तविकता बन सके, उसे जन जीवन
नित नव सार्थकता दे, वह जीवन तृष्णा का
मानव अंतर के प्रकाश में रूपांतर कर
उसे मनुज के योग्य बनाये,—घृणा द्वेष को
प्रीति द्रवित कर! मानव ईश्वर का प्रतिनिधि है!
लोकोत्तर जीवन विकास की क्षेत्र है धरा,
मानव का जीवन आत्मोन्नति का प्रांगण है!

दूसरी छाया

पुण्य कर्म रत रहो, पाप का पथ मत रोको:
प्रभु खल सज्जन को करते सम ज्योति दान नित!
एक सर्वगत प्रेम व्याप्त सब चराचरों में,
वही प्रेम ईश्वर, जिसका मंदिर मानव उर:
तुम पवित्र यदि रहो तुम्हें फिर किसका क्या भय?
सदाचार श्रेयस्कर भू पर, स्वर्ग लोक से!
कैसे खिलते फूल, उन्हें क्या जीवन चिन्ता?
उनका पालक सब का ही रक्षक है जग में!
क्षमा शत्रु को करो, तुम्हें प्रभु क्षमा करेंगे,—
प्रेम, क्षमा, जन दया, विनय, सोपान स्वर्ग के!
धन्य विनम्र निरीह, उन्हें स्वर्धाम मिलेगा,
धन्य सत्य पथ चारी, होंगे पूर्णकाम वे!
धन्य पवित्र हृदय, ईश्वर का मुख देखेंगे…
धन्य शांति कामी, प्रभु के शिशु कहलाएँगे।
धन्य न्याय हित व्यथित, स्वर्ग में राज्य करेंगे।
तुम धरती के लवण, विश्व भर के प्रकाश हो,
ईश्वरीय महिमा को भू पर करो प्रकाशित।

तीसरी छाया

रोग शोक औ' जरा मृत्यु पीड़ित जग जीवन,
सुख की तृष्णा—मार, शत्रु दुर्जेय मनुज का!

राग द्वेष षड् रिपुओं का पट चक्र भयंकर,
अंधकार अज्ञान जनित छाया जन भू पर।
आत्म शुद्धि का अंतर्मुख असि पथ है दुर्गम,
संबोधन का द्वार घिरा स्वर्णिम जालों मे।
मूल अविद्या है, प्रसार जिसकी तृष्णा का
नाम रूपमय षडायतन, भव, जन्म मरण है।
कारण, दुःख निदान, निरोध समझ कर मानव
जन मंगल का मार्ग गहे,—मध्यमा प्रतिपदा।
क्षण भंगुर यह जगत, नित्य चैतन्य न आत्मा,
निखिल पदार्थ अनित्य, कर्म जग-जीवन-बंधन,—
तृष्णा दुख का कारण, उसका पूर्ण त्याग कर
ग्रहण करें जनगण सेवा पथ, जीव दया रत।
बुद्ध, धर्म औ' संघ शरण निर्वाण प्राप्ति पथ।

चौथी छाया

ईश्वर केवल एक, असीम दया सागर जो,
उसके सब सेवक समान, जातियाँ व्यर्थ है।
मृत्यु श्रेष्ठतर मृत्यु-भीत के अविश्वास से,
ईश्वर पर विश्वास, धर्म का सारतत्त्व दृढ़।
विनय, दान, प्रार्थना,—संपदा संत जनों की,
ईश्वरीय जन साम्य चाहता मैं पृथ्वी पर।

पाँचवी छाया

अभी लौट कर आया हूँ पार्थिव यात्रा से
अभी नहीं भर सके मर्म के व्रण भी मेरे,
जो कि लोक सेवा के प्रिय उपहार चिह्न है!
महापुरुष जो ज्योति चिह्न जगती के पथ पर
छोड़ गये हैं, मैंने आजीवन उनका ही
नम्र अनुसरण किया! अतुल आदर्शों की निधि
संचित कर नित, उन्हें कसौटी में कस उर की,

प्रथम छाया

सफल मनोरथ हो तुम वत्स, कला जीवन की
मूर्त वास्तविकता बन सके, उसे जन जीवन
नित नव सार्थकता दे, वह जीवन तृष्णा का
मानव अंतर के प्रकाश में रूपांतर कर
उसे मनुज के योग्य बनाये,—घृणा द्वेष को
प्रीति द्रवित कर! 'मानव ईश्वर का प्रतिनिधि है!
लोकोत्तर जीवन विकास की क्षेत्र है धरा,
मानव का जीवन आत्मोन्नति का प्रांगण है!

दूसरी छाया

पुण्य कर्म रत रहो, पाप का पथ मत रोको:
प्रभु खल सज्जन को करते सम ज्योति दान नित!
एक सर्वगत प्रेम व्याप्त सब चराचरों में,
वही प्रेम ईश्वर, जिसका मंदिर मानव उर:
तुम पवित्र यदि रहो तुम्हें फिर किसका क्या भय?
सदाचार श्रेयस्कर भू पर, स्वर्ग लोक से!
कैसे खिलते फूल, उन्हें क्या जीवन चिन्ता?
उनका पालक सब का ही रक्षक है जग में!
क्षमा शत्रु को करो, तुम्हें प्रभु क्षमा करेंगे,—
प्रेम, क्षमा, जन दया, विनय, सोपान स्वर्ग के!
धन्य विनम्र निरीह, उन्हें स्वर्धाम मिलेगा,
धन्य सत्य पथ चारी, होंगे पूर्णकाम वे!
धन्य पवित्र हृदय, ईश्वर का मुख देखेंगे…
धन्य शांति कामी, प्रभु के शिशु कहलाएँगे।
धन्य न्याय हित व्यथित, स्वर्ग में राज्य करेंगे।
तुम धरती के लवण, विश्व भर के प्रकाश हो,
ईश्वरीय महिमा को भू पर करो प्रकाशित।

तीसरी छाया

रोग शोक औ' जरा मृत्यु पीड़ित जग जीवन,
सुख की तृष्णा—मार, शत्रु दुर्जेय मनुज का!

राग द्वेष षड् रिपुओं का षट् चक्र भयंकर,
अंधकार अज्ञान जनित छाया जन भू पर।
आत्म शुद्धि का अंतर्मुख अति पथ है दुर्गम,
संबोधन का द्वार घिरा स्वर्णिम जालों से।
मूल अविद्या है, प्रसार जिसकी तृष्णा का
नाम रूपमय षडायतन, भव, जन्म मरण है।
कारण, दुःख निदान, निरोध समझ कर मानव
जन मंगल का मार्ग गहे,—मध्यमा प्रतिपदा।
क्षण भंगुर यह जगत, नित्य चैतन्य न आत्मा,
निखिल पदार्थ अनित्य, कर्म जग-जीवन-बंधन,—
तृष्णा दुख का कारण, उसका पूर्ण त्याग कर
ग्रहण करें जनगण सेवा पथ, जीव दया रत।
बुद्ध, धर्म औ' संघ शरण निर्वाण प्राप्ति पथ।

चौथी छाया

ईश्वर केवल एक, असीम दया सागर जो,
उसके सब सेवक समान, जातियाँ व्यर्थ हैं।
मृत्यु श्रेष्ठतर मृत्यु-भीत के अविश्वास से,
ईश्वर पर विश्वास, धर्म का सारतत्त्व दृढ़।
विनय, दान, प्रार्थना,—संपदा संत जनों की,
ईश्वरीय जन साम्य चाहता मैं पृथ्वी पर।

पाँचवी छाया

अभी लौट कर आया हूँ पार्थिव यात्रा से
अभी नहीं भर सके मर्म के व्रण भी मेरे,
जो कि लोक सेवा के प्रिय उपहार चिह्न हैं!
महापुरुष जो ज्योति चिह्न जगती के पथ पर
छोड़ गये हैं, मैंने आजीवन उनका ही
नम्र अनुसरण किया! अतुल आदर्शों की निधि
संचित कर नित, उन्हें कसौटी में कस उर की,

मैंने विविध प्रयोग किये जन के जीवन में,—
स्वतः सत्य का पालन कर मन कर्म वचन से !
ईश्वर सत्य न कहके, कहूँ, सत्य ईश्वर है ?
सतत असत् पर सत् की, जड़ तम पर प्रकाश की,
तथा मृत्यु पर जीवन की जय होती जग में !
नियम नियामक दोनों एक तथा अभिन्न हैं।
भू जीवन में आज नये के प्रति आग्रह है !
सभी नया चाहिए मनुज को, जादू से ज्यों
सभी पुराना क्षण में नया बदल जाएगा !
शाश्वत और चिरंतन सत्य नहीं हो कुछ भी,
अभिव्यक्ति पाता जो जीवन व्यापारों में,
पुनः पुरातन का नूतन में समावेश कर !
सूर्य तले, कहते हैं, कुछ भी नया नहीं है,
घटवासी को छोड़, नित्य अभिनय, पुराण जो !
खादी सूतों के सात्विक ताने बाने भर
जन जीवन पट बुना सरल लोकोज्ज्वल मैंने
जनगण के श्रम बल के मूल्यों पर आधारित,
हिंसा शोषण के धब्बों से उसे बचा कर
औ' असत्य के कल्मष से रक्षा कर उसकी !
अन्यायी अत्याचारों के प्रति नृशंस के
मैंने नम्र-अवज्ञा के सिखला प्रयोग नव,
युद्ध जर्जरित जग को दिखा अहिंसा का पथ,
भीरु हृदय में मानव गौरव पुनः जगाया,—
आत्म शक्ति से रोक पाशविक हिंसा का बल !

कलाकार

अब भी जन मन मर्मर कर उठता संभ्रम से,
पावन स्मृति के मलय स्पर्श से पुलकाकुल हो,
एक नया चेतनाऽलोक उठ धरा गर्भ से
बढ़ता नभ की ओर, स्वर्ग मुख दीपित करने !
शत प्रणाम; जन युग की इस आराध्य ज्योति को !

पाँचवीं छाया

जन मंगल हो ! लोक कर्म रत रहो निरंतर
सेवा करना ही प्रणाम करना है मुझको !

['रघुपति राघव राजाराम' की धुन धीरे धीरे 'श्री रामचंद्र कृपालु भज मन' के श्लक्ष्ण कंठ स्वर में डूब जाती है]

कलाकार

ओः, यह क्या स्वांतः सुखाय तुलसी के स्वर हैं ?

एक स्वर

मैं पहिले ही परम मंत्र दे चुका विश्व को !
राम चरण अवलंब बिना परमार्थ सिद्धि की
पुण्याशा वारिद की गिरती बूँद पकड़ कर
नभ में उड़ने की अभिलाषा सी मिथ्या है !
सियाराम मय जान समस्त जगत को निश्चित
बार-बार करता प्रणाम युग पाणि जोड़ निज !

दूसरा स्वर

परम लोकप्रिय यह तुलसी ही की वाणी है !

एक स्वर

मुझे लोकप्रिय बतलाते हैं सूरदास जी !
सूर सूर है ! जिनके मधुर कृष्ण का शैशव
'अब भी घुटनों बल चलता इस भरत भूमि के
घर घर में, आँगन आँगन पर, भुवन मोहिनी
अपनी लीला से विमुग्ध कर जन जन का मन !
अब भी मौन निकुंजों से वंशी ध्वनि छन कर
ज्योत्स्ना में पुलकित करती रहती भू का मन,
यमुना तट नित मुखरित रहता रास लास से !
दुर्लभ अंतर्मुखी दृष्टि यह ! आप राम को

सदा कृष्णमय रहे देखते ! मुझको उनका
धनुर्बाणधर रूप सदैव प्रणम्य रहा है !

कलाकार

यह क्या मीरां ? मौन, नृत्य में समाधिस्थ सी !

दूसरा स्वर

नृत्य निरत, गिरिधर में लीन, भाव-रस डूबी,
प्रेम दिवानी मीराँ केवल तन्मयता है !
निःस्वर नूपुर ध्वनि से ही उसकी सत्ता का
मर्म मधुर आभास स्वर्ग को मिलता संतत !

तीसरा स्वर

ठीक बात है, मस्त हुआ मन तब क्यों बोले !

एक स्वर

शबद अनाहद के कबीर यह, अकथ प्रेम का
गुड़ खाकर, गूँगे-से सदा रहे मुसकाते !

दूसरा स्वर

सूक्ष्म सुषुम्ना के तारों से झीनी झीनी
बिनी चेतना सुघर चदरिया स्वच्छ आपने,
कलुष चिह्न से मुक्त : धन्य हैं आप, कि जिसने
घूँघट का पट खोल सत्य के मुख को देखा,
सद्‌गुरु से चूनर रँगवा ज्यों की त्यों रख दी,—
अमर रहे साजन को प्रिय शृंगार आपका !

चौथा स्वर

मुझे आपकी अमर साखियाँ सदा प्रिय रहीं;
चमत्कारिणी काव्य दृष्टि, मार्मिक, रहस्यमय,—
उलटवासियों का क्या कहना ! अद्‌भुत, अद्‌भुत !
नदी नाव के बीच समाती रहती प्रतिपल !

मेघ मंद्र क्या ये कवीन्द्र के मादक स्वर हैं !

चौथा स्वर

अमरों को है प्रिय शस्य-स्मित स्वर्ण धरित्री,...
पर भारत के अकर्मण्य जन मुख अतीत का
देखा करते सदा...विगत गौरव स्वप्नों में
खोए, निज दायित्वों के प्रति सोए रहते !
सामाजिक चेतना न अब भी जाग्रत् उनमें !
नए राष्ट्र का भार वहन करने में अक्षम,
जाति पाँतियों, कुल परिवारों में विभक्त वे,
रूढ़ि रीतियों से शासित, मत भेद प्रताड़ित !
मैंने निज अंतर की स्वर्णिम झंकारों से
भू भागों की संस्कृतियों का किया समन्वय,
विश्ववाद स्थापित कर खंडित भू प्रांगण में,—
भारत की आत्मा को पश्चिम के जीवन की
नव सौष्ठव-गरिमा से फिर से आभूषित कर !
मानव उर के भावों को पहिनाए मैंने
स्वर्ण रजत परिधान रक्तस्मित छायातप के,
उषा ज्योत्स्ना की छाया में भू जीवन के
गीतों का पट बुन अभिनव सौन्दर्य बोध से !—
श्री शोभा गरिमा से मंडित हो जन धरणी,
महत् ज्ञान विज्ञान समन्वित हो जन जीवन,
यही मात्र संदेश विश्व जन के प्रति मेरा !
तुम प्रसन्न मन, आश्वासित हो लौटो भू पर;
वही प्रगति का, आत्मोन्नति का पुण्य क्षेत्र है !

[वादित्र संगीत : छायाएँ अंतर्धान होती हैं : मंच स्वर्णारुण प्रकाश से भर जाता है]

कलाकार

[अर्ध जाग्रतावस्था में]

धन्य भाग्य है ! सफल हो गया मानव जीवन,
आज महापुरुषों का क्षण सामीप्य मिल सका,
और महाकवियों का दर्शन लाभ हो सका !
सभी महाकवियों की वाणी जन मंगल की
महत् भावनाओं से प्रेरित रही निरंतर !
सभी श्रेष्ठ धर्मों का अभिमत एक रहा है,—
ईश्वर पर विश्वास, सत्य आचरण धरा पर !
सभी महापुरुषों के लक्षण एक रहे हैं,—
आत्मत्याग, जन सेवा, दया, विनय, चरित्रबल !
भू की भिन्न परिस्थितियों को भिन्न रूप से
संयोजित नित किया स्वर्ग की महत् दया ने,
मूर्तिमान हो युग युग में बहु सत्पुरुषों में !
सभी लोक पुरुषों की वाणी सत्य पूत है,
सभी दिव्य द्रष्टा, जन भू के अभिभावक हैं !
पर, मानव की नियति हाय, सचमुच निर्मम है !
सद् वचनों के लिए बधिर हैं हृदय के श्रवण,
मनोभूमि बंध्या है उच्च विचारों के प्रति !
दिव्य प्रेरणाओं के विमुख मनुष्य चेतना !
सत्य बीज जन प्राणों के रस से सिंचित हो
क्यों न प्ररोहित हो उठते जीवन गरिमा में ?
कहाँ, कौन सी त्रुटि है ?…कैसी परवशता है !
अह, कँप उठता मन मानव की दुर्बलता से !
ऊपर से आकर प्रकाश सन जाता तम में
अंधकार को और अँधेरा बना धरा पर !
दुःस्वप्नों से आकुल हो उठता है अंतर,…
रौंद रहा है कोई उर को,…विश्वासों के
शिखर बिखरते जाते, खिसक रही मन की भू,…
ज्यों अंतर्मन का विधान हो चूर्ण हो रहा,—
घने कुहासे से आवृत है मानव आत्मा !!

[स्वप्न वाहक वादित्र संगीत : कलाकार की आत्मा अनेक उच्च तथा सूक्ष्म प्रसारों में विचरण करती है]

अह, क्या सूक्ष्म अनेकों स्तर हैं स्वर्गलोक के ?
कैसा सम्मोहन है सद्यः स्फुट वर्णों का !
यह प्राणों का हरित स्वर्ग सा लगता सुंदर,
जीवन की कामना जहाँ हिल्लोलित अहरह
शस्य राशि सी श्यामल, शत वर्णों में मुकुलित,
इंद्रिय भृंगों से गुंजित, मधु गंधोन्मादन !
मदिरा की सरिताएँ बहतीं ! यौवन उन्मद
अप्सरियों की नूपुर ध्वनि मंथित करती मन,—
अर्धखिली कलियों सी कोमल देह लताएँ
अंग भंगिमा भर, नयनों को रखतीं अपलक !

[भाव परिवर्तन सूचक वादित्र संगीत]

यह भावों का स्वर्ग लोक है मनो भूमि पर,
झूल रहा जो संयम तप की श्रुश डोरों में !
यहाँ व्याप्त चिन्मय प्रकाश नीरव नीलोज्वल,
मर्यादा में बँधी क्यारियाँ,—भाव राशि के
मुकुल स्वप्न-स्मित, पक्व पुण्य फल, आदर्शों की
लतिकाएँ लटकीं पात्रों से विनयानत हो !
सूक्ष्म वायु मंडल में व्यापकता है निर्मल
मौन प्रेरणा की सुगंध से समुच्छ्वसित जो !
श्रद्धा औ' विश्वास तैरते हंस मिथुन-से
उच्च विचारों के प्रशात जल में रजतोज्वल,
अतल नील उर सरसी को कर प्रीति तरंगित !

[भाव परिवर्तन सूचक वादित्र संगीत]

आत्मशुद्धि के नियमों की निर्जन समाधि-से
और अनेकों स्वर्ग बसे हैं, धर्म नीति गत
सदाचार के स्तम्भों पर, तर्कों से वेष्टित,
जहाँ जगन्मिथ्या की निष्क्रियता छाई है !

मुक्ति दीप टिमटिमा रहा फीका प्रकाश दे,
संध्या के झुटपुट सा पीला-तम विकीर्ण कर,—
आत्माएँ उड़ती जुगुनू सी स्वयं प्रकाशित !

[पुनः भाव परिवर्तन सूचक वादित्र संगीत]

अधोमुखी लघु स्वर्ग, संप्रदायों में सीमित
लटके हैं अगणित त्रिशंकु से, बहुमत पोषक,...
कट्टरपंथी आचारों के झींगुर झन झन
जहाँ रेंगते, दारुण धर्मोन्माद बढ़ा कर !
जहाँ रूढ़ि जर्जर आस्था के झंखाड़ों पर
क्षुद्र अहंता के दिवाध हैं नीड़ बसाए
मंद प्रभा में, जो प्रकाश की छाया भर है !
आदर्शों के उच्च स्वर्ग, संकीर्ण क्षीण हो,
बिखर गए जाने क्यों बहु उपशाखाओं में,
शुष्क कर्म कांडों में, जड़ विधियों, नियमों में !

[वादित्र संगीत के साथ दूर से वाहित गीतों के स्वर जिनमें कलाकार को अपने मन के भावों की प्रतिध्वनि मिलती है]

सहगान

यह क्या मन के रीते सपने !
कहाँ स्वर्ग सुख शांति, कहाँ रे
धरती के दुख भरे कलपने !

सपने भी तो कब के बीते
मीठे सुख क्षण लगते तीते,
धर्म नीति आदर्श सुनहले
काम न आते लगते अपने !

यह छायाओं का अंतर्मन
कभी रहा जो जीवन चेतन,
अब भी विस्मृत मधु स्मृतियों के
स्वप्नों से दृग लगते झँपने !

एक वृत्त रे हुआ समापन,
स्वर्ग न रहता कभी चिरंतन,
नए जागरण का नव रण अब
नए मंत्र के मनके जपने!

लौट न आ सकते बीते क्षण
उन्हें न दो अब व्यर्थ निमंत्रण,
जन मन प्रांगण आज लगा फिर
अश्रुत पद चापों से कँपने!

कलाकार

[चिन्तातुर स्वर में]

कहाँ हाय, मैं भटक गया हूँ, किन लोकों में,…
दुःस्वप्नों से पीड़ित क्यों हो उठता अंतर?
क्यों विभक्त कर दिया सत्य को मानव उर ने,…
मानव मन की सीमा ही क्या इसका कारण?—
खंड खंड कर करता जो नित पूर्ण को ग्रहण!
जीवन, मन, चेतना सभी तो एक सत्य है,
स्वर्ग धरा, जड़ चेतन, एक, अभेद्य, पूर्ण हैं!

[नीचे के वातावरण से उठकर अंधकार जनित कटु संघर्ष का कुत्सित कोलाहल सुनाई पड़ता है]

ये कैसी चीत्कारें उठतीं अवचेतन से?
घोर तिमिर का बादल घेर रहा हो मन को!…
कहाँ गिर रहा हूँ मैं?…ये क्या नरक लोक है?
नीचे उतर हृदय बुझता जाता विषाद से,
अंधकार के भी क्या हाय, अनेकों स्तर हैं?

[दारुण विषादपूर्ण वादित्र संगीत : प्रकाश मंद पड़ता है : कलाकार आँखें मलता हुआ करवट बदल कर फिर गाढ़ निद्रा मग्न होता है।]

स्वप्न दृश्य

[२]

[कलाकार का दु:स्वप्न ग्रस्त अंतर अवचेतन के छायांधकार पूर्ण लोकों में भटकता है। सुदूर से वाहित संगीत के स्वर उसके कानों में टकराते हैं]

[ह्रासोन्मुख चेतना का गीत]

अंधकार भी तो प्रकाश है !
पलकों में रे लवण अश्रु कण
अधरों पर क्षण मधुर हास है !

नयनों को प्रिय नींद घनेरी
जीवन तृष्णा देती फेरी,
मोह निशा की अंचल छाया,
मनुज ध्येय इंद्रिय विलास है !

वृथा आयु की अवधि गँवाई,
मन की टीस नहीं मिट पाई,
चार दिवस की मधुर चाँदनी
रैन अँधेरी फिर उदास है !

विकसित पशु ही निश्चय मानव
कभी देव वह, फिर वह दानव
ह्रास सतत होता जीवन में,
कहने को होता विकास है !

जो जैसा वह बना रहेगा,
बहता पानी सदा बहेगा,
बड़े बड़े मुनि हार गए रे
मनुज प्रकृति का क्रीत दास है !

लिखा करम का नहीं टलेगा
अपना बस कुछ नहीं चलेगा,
कभी मंद तो कभी तेज है
मन की गति से बँधी साँस है !

यहाँ कौन, कब किसका सहचर
अपने सब, सबका है ईश्वर,
हानि लाभ सुख दुख की दुनिया
कभी दूर तो कभी पास है !

कलाकार

[कर्तव्य मूढ़ सा]

अंधकार ? यह कैसे हो सकता प्रकाश सा
अंधकार भी क्या प्रकाश की एक शक्ति है ?
या प्रकाश ही अंधकार की एक शक्ति हो ?...
खूब पहेली है !...उफ़, मैं क्या सोच रहा हूँ !
कैसी दूषित वायु यहाँ है भ्रांति से भरी !
कहाँ आ गया मैं,...किस दृष्टि विहीन लोक में !
जहाँ ह्रास युग का विपण्ण तम छाया निष्क्रिय,...
घोर हृदय कार्पण्य भरा अनुदार दैन्य सा !
यह कैसी स्वार्थों की अँधियारी नगरी है,
जिससे रही अपरिचित मेरी कला चेतना !
क्षुद्र भित्तियों में विभक्त है इसका प्रांगण
जिनमें घिरे घरौंदे लगते तुच्छ घिनौने !
उफ़, कैसे आलस प्रमाद में सने लोग ये,
कर्म हीनता ही हो ध्येय कृपण जीवन का !
मुंड मुंड में बँटे, गुप्त पर-निन्दा में रत,
एक दूसरे के अनिष्ट के हित नित तत्पर,
राग द्वेष से जर्जर, कर्तव्यों के कायर,

*अहम्मन्य, अभिमानी, स्पर्धा-दंशन-पीड़ित,—
हठी, कुटिल-मति, भेदभाव से भरे, विषैले,
पर-द्रोही, प्रतिशोध तृषित, निर्बल के पीड़क,
कलह विवाद विनोदी, घोर विषमता प्रेमी,
निरुद्यमी, निःसत्व, निरुत्साही, निराश मन,
रोग शोक, दारिद्रय दैन्य के जीवित पंजर
निखिल क्षुद्रताओं के जीवन-मृत प्रतीक-से !!
सूख गया प्रेरणा शक्ति का स्रोत हृदय में,
केवल गत संस्कारों पर जीवित इनके शव,
रेंग रहे जो भाग्य भरोसे भग्न रीढ़ पर !
इसीलिए ये रक्त स्वार्थ के पंजे फैला
लूटा करते एक दूसरे का जीवन-श्रम,...
जाति पाँतियों में बहु खंडित, चिपटे रहते
पथराए से रूढ़ि रीतिगत अभ्यासों से !
क्षुद्र संप्रदायों की सीमा अतिक्रम कर ये
निर्मित कर पाते न महत् सामाजिक जीवन !
तुच्छ मोह ममता में डूबे, परंपरागत
कठपुतलों से नाच रहे, विधि लिपि पर निर्भर !*

[करुण वादित्र संगीत]

*हाय, कौन जीवन बंदिनी सिसकती है वह ?....
यह क्या अबला ? छाया सी लिपटी पैरों से !
छिन्न लता सी कौन अधमरी वह ? क्या विधवा ?
कौन माँगते गा गा कर ये ?....क्या अनाथ शिशु ?
अह, कैसी जीवन विभीषिका जन धरणी पर
जो मानव को वंचित रखती मनुष्यत्व से !!
कौन लोग ये ?... राग द्वेष कटु कलह क्रोध के
मूर्तिमान कुत्सित प्रतीक-से ? निम्न शक्तियों के
अमानुषी प्रतिनिधियों-से लगते हैं जो !*

[भाव परिवर्तन द्योतक वादित्र संगीत]

ये क्या संस्कृति पीठ, कला साहित्य द्वार हैं ?
क्षुद्र मतों में, कुटिल गुटों में ईर्ष्या-खंडित !
ह्रास युगीन अहंतात्रों के मनः संगठन,
आपस के स्वार्थों, संघर्षों से अनुप्राणित !
सधे बँधे, प्रच्छन्न रूप से, व्यक्ति जहाँ पर
पर-परिभव हित तत्पर रहते, स्पर्धा पीड़ित !
जीवन कुंठा जहाँ अशृंखल अट्टहास बन
विस्मय स्तंभित कर देती क्षण-मूढ़ अतिथि को !
और सृजन प्रेरणा व्यक्तिगत स्तुति निन्दा पर
निर्भर रहती, रिक्त शिल्प सौष्ठव में मंडित !
यहाँ महत् निर्माण न संभव भाव सृष्टि का,
हाँ ! संगठित प्रहार सुलभ है सहकर्मी पर !
बुद्धि जीवियों का आहत अभिमान प्रदर्शन
यहाँ मात्र वाणी की सेवा, कलाकारिता !

[भाव द्योतक गंभीर वादित्र संगीत]

कैसे मनोविकार मात्र बन गई चेतना
सत्ता से हो विलग, ग्रंथियों में हो गुंफित !
सामाजिक संतुलन खो गया क्यों जीवन का ?···
किन दोषों से प्राणों का संयमन नष्ट हो
विष बन फैल गया मन के नैतिक विधान में ?····
किस प्रकार खोखला हो गया निखिल आत्मबल,····
क्यों चरित्र की अंतः संगति चूर्ण हो गई ?
युग युग से संगठित मनोमय अंतर्मानव
हाय, खो गया महाह्रास के अंधकार में !!
ये साधारण व्यक्ति नहीं···मन के निर्वासित
घृणित विकारों की छाया है—जीवन शापित !!
अह, यह दारुण स्वप्न न जाने कब टूटेगा,···
निश्चेतन के अतल गर्त से उठ मेघों सी,
किमाकार आकृतियाँ मँडराती दैत्यों सी

कहीं खुला आकाश नहीं, जो स्वच्छ वायु में
साँस ले सके मन क्षण भर अह, छूट नरक से !

[नैराश्यपूर्ण करुण वादित्र संगीत जो धीरे धीरे लोक जागरण के उत्सव संगीत में परिणत होकर द्रुत से द्रुततर होता जाता है। कलाकार की पलकों पर दूसरा स्वप्न चित्र उतरता है : सुदूर से वाहित संगीत के स्वर आते हैं।]

जन गीत

जीवन में फिर नया विहान हो,
एक प्राण, एक कंठ गान हो !

बीत अब रही विषाद की निशा,
दीखने लगी प्रयाण की दिशा,
गगन चूमता अभय निशान हो !

हम विभिन्न हो गये विनाश में,
हम अभिन्न हो रहे विकास में,
एक श्रेय प्रेय अब समान हो !

क्षुद्र स्वार्थ त्याग, नींद से जगें,
लोक कर्म में महान सब लगें !
रक्त में उफान हो, उठान हो !

शोषित कोई कहीं न जन रहे,
पीड़न अन्याय अब न मन सहे,
जीवन शिल्पी प्रथम, प्रधान हो !

मुक्त व्यक्ति, संगठित समाज हो,
गुण ही जन मन किरीट ताज हो,
नव युग का अब नया विधान हो !

कलाकार

आज व्यक्ति संघर्ष लोक जागरण बन रहा
धीरे निर्मम स्वार्थों की शृंखला तोड़ कर!
किस माया बल से युग जीवन अंधकार फिर
विहँस उठा मानस-उज्ज्वल मंगल प्रभात में!
निश्चय ही वह अंधकार था नहीं अकेला,
अलसाया जीवन प्रकाश था,...मानव मन की
अंध वीथियों, रुद्ध घाटियों में बंदी हो
म्लान पड़ गया था जो छाया सा कुम्हला कर!...
चेतन से जड़ को देखें, जड़ से चेतन को
दोनों का निष्कर्ष एक ही होता निश्चय!
उद्वेलित हो उठा आज स्तंभित जन सागर
प्राणों का नव ज्वार उमड़ता उसके उर में,
मज्जित कर देगा वह भू तट, युग प्लावन में
बाधाओं को लाँघ, बहा अवसाद युगों का!...
नवल प्रेरणा के स्पर्शों से पुलकित जन मन,
आंदोलित हो उठा विविध शाखाओं का जग,
नव वसंत की जीवन शोभा में दिगंत को
मधु प्लावित कर देगा वह, नव गंध मंजरित!
आः, महान् जागरण, युगों से लोक अभीप्सित,
भू पलकों पर मूर्त हो रहा स्वप्न सत्य सा,
जगती के वैषम्य-विरोधों को, कल्मष को,
मिटा सदा को धरा वक्ष के वैरूप्यों को!...
एक प्राण हो रही धरा, युग युग से खंडित,...
एक लक्ष्य को बढ़ सहस्र पग श्रेणि मुक्त हो,
जन भू में स्वर संगति भरते पद चापों से!
कौन दिशा वह, किधर बढ़ रहा जन-भू-जीवन,
मत्त, स्फीत, गर्जित समुद्र सा हिल्लोलित हो?
कौन प्रेरणा उसे खींचती किस नव पथ पर?
कैसा वह ईप्सित प्रदेश? जन स्वर्ग लोक वह?
क्या उसका आदर्श रूप? यह धरा चेतना

कैसा स्वर्णिम नीड़ रचेगी जीवन तरु पर,
जहाँ मनुज की प्राण कामना पूर्ण-काम हो,
पंखों के सुख में लिपटी कल गान करेगी !...
जो मधुचक्र समान भरा होगा नव मधु से !
क्या होंगे उपकरण लोक सत्ता, संस्कृति के,
कैसा अंतस्तत्व ?— जानने को उत्सुक मन !

[वैभव युग का आनंद मंगल सूचक वादित्र संगीत : कलाकार की स्वप्न चेतना व्यापक जीवन प्रसार में विचरण करती है : सुदूर से वाहित गीत के स्वर ।]

उत्सव गीत

गीत नृत्य, राग रंग
जन मन में नव उमंग !
सफल स्वर्ण धरा स्वप्न
लोह नियति दर्प भंग !
पूर्ण काम धरणि धाम
शस्य हरित, श्री ललाम,
शोभित सह कृषि प्रकाम
जीवन की सी तरंग !

मानवता वर्ग हीन
तंत्र भी हुआ विलीन,
जन सब संस्कृत, प्रवीण
युक्त विविध लोक संघ !

वैभव का रे न पार
ऋद्धि सिद्धि खड़ी द्वार,
आधि व्याधि गयीं हार
रिक्त दैन्य का निषंग !

ज्ञात निखिल अब इति अथ
चढ़ता जन अभिमत रथ,
विस्तृत जनहित युग पथ
गति प्रिय जीवन तुरंग !

मानव मानव समान
संस्कृति से सिक्त प्राण,
स्वप्नों का सा विमान
उड़ता उर का विहंग !

कलाकार

जन भू की भावी की झाँकी यह निःसंशय
अंतिम स्थिति जो भौतिक सामाजिक विकास की !
मधुर स्वप्न सा लगता जन का विभव स्वर्ग वह
वर्गहीन से तंत्र हीन हो जन समाज जब
प्राप्त कर सकेगा अभिमत पार्थिव जीवन का !
वहु शिक्षा संपन्न, कला कौशल में दीक्षित
मनुज कर सकेंगे निर्भय भू जीवन यापन
विकसित, संस्कृत, आप्त प्राणियों-से पृथ्वी पर, –
सामाजिक दायित्व स्वतः ही संचालित कर !
आः, कैसा जीवन होगा तब जन धरणी का ?
उपा सुनहली, ज्योत्स्ना अधिक रुपहली होगी ?
मानव की चेतना ज्योति प्रहसित सागर सी
धोएगी भू की विपण्णता को, जड़ता को,
लोक कर्म कल्लोलित, नव भावोद्वेलित हो ?
दिग् दिगंत जन मन वैभव से आप्लावित हो
शाश्वत मधु से सतत रहेगा गंध गुंजरित ?
प्रीति कुंज जन ग्राम अमर पुरियों-से कुसुमित
मंडित कर देंगे भू को श्री सुख गरिमा से ?

रूढ़िबद्ध, कुंठित, कुत्सित संस्कार युगों के
उच्छेदित हो जाएँगे मानव अंतर से ?
विस्तृत उपचेतन गह्वर, व्यापक मनःक्षितिज,
विकसित हो जाएगा जन जीवन संवेदन ?
घृणित क्षुद्रताएँ मिट जाएँगी मनुष्य की
दैन्य अविद्या तमस निरस्त नये प्रकाश से ?
स्वार्थ लोभ कटु स्पर्धा घुल जाएगी मन की ?
रूपांतर हो जाएगा मानव स्वभाव का ?
व्यक्ति समाज परस्पर घुल मिल जाएँगे तब
भर जाएगा अंतराल दोनों का गहरा ?
चिन्ताओं से मुक्त मनुज आत्मोन्नति में रत
संस्कृति का नव स्वर्ग बसाएगा धरणी पर,
आध्यात्मिक सोपानों पर आरोहण कर नव ?

[आनन्द कल्पना मग्न वादित्र संगीत सहसा रण वाद्यों के निनाद तथा विप्लव के कोलाहल में डूब जाता है]

[स्वप्न में चौंककर]

अह, यह कैसी दुर्मुख रण भेरी बजती है,
आहत कर दिङ् मंडल को दारुण गर्जन से !
कौन शक्तियाँ कार्य कर रही भू मानस में ?
क्यों राष्ट्रों के बीच पड़े हैं लोह-आवरण ?
कौन साधनों का प्रयोग कर रहे धराजन,
नव भू स्वर्ग बसाएँगे क्या रक्त सने कर ?
क्यों भीषण उपकरण जुट रहे विश्व ध्वंस के ?
सेनाएँ संगठित हो रहीं…विकट, भयंकर
अस्त्र शस्त्र बन रहे विनाशक, वज्र निनादक ?
काल दंष्ट्र-से जो कराल, जिनके दंशन में
महा नाश के निर्मम तत्त्व हुए हैं बंदी,
शत प्रलयों का ध्वंस, कोटि कुलिशों का पावक
जिनमें पुंजीभूत किटाणु महामारी के !!

[मृत्यु और विनाश सूचक करुणतम वादित्र संगीत]

क्यों मानव मन का उत्पीड़न, जन श्रम शोषण
आज चल रहा छल बल से, निर्मम साहस से !
कहाँ गया रण धर्म, मानुषी मर्यादाएँ,
विविध संधि-विग्रह, समझौते भू भागों के,—
नियम पत्र, पण, निर्बल राष्ट्रों का संरक्षण,
औ' सर्वोपरि शांति घोषणाएँ देशों की ?···
नारकीय कर्मों में रत क्यों उभय शिविर अब ?···
मनुज हृदय क्यों आज हो गया इतना निर्मम ?···
इन्हीं साधनों से होगी क्या सृष्टि श्रेय की ?···
आज साध्य औ' साधन में क्यों इतना अंतर ?···
एकांगी सुख स्वप्न रहा मानव समाज का,
भौतिक मद से, जीवन तृष्णा से प्रमत्त हो,
बिखर गया जो अंध नाश में आत्म पराजित !!···
युग आदर्श यथार्थ साथ चल सके न भू पर !

[वादित्र संगीत तीव्रसे तीव्रतर होता है · रणनाद और
विप्लव संक्षोभ, चीत्कारें तथा कोलाहल]

फैला हाहाकार, तुमुल रणनाद हो रहा,
शत शत वज्र कड़क उठते नभ को विदीर्ण कर,
प्रलय कोप से काँप रहे भू के दिगंत,···अह,
नरक द्वार खुल गया नाश का क्या जन भू पर !!

[भय ग्रस्त होने के कारण कलाकार का स्वप्न टूट जाता है। वह अर्ध चेतनावस्था में विस्फारित दृष्टि से इधर उधर देखता है : सुदूर से वाहित संगीत उसका ध्यान आकर्षित करता है : वह उठकर ध्यान मौन अवस्था में बैठ जाता है।]

[मंद्र करुण वादित्र संगीत के साथ धरा चेतना का गीत]

अंधकार, घन अंधकार है,
अंधकार है!
रुद्ध मनुज के हृदय द्वार,
घन अंधकार छाया अपार है,
अंधकार है
बाहर जीवन का संघर्षण
भीतर आवेशों का गर्जन,
भरा मौन प्राणों में क्रंदन
उर में दुःसह व्यथा भार है!
बदल रहा जन भू का जीवन,
बिखर तटों पर रहा विश्व मन,
घुमड़ रहा उन्मद अवचेतन
मनुज विजय बन रही हार है!
युग परिवर्तन का दुर्वह क्षण
डाल अचेतन का अवगुंठन
आरोहण करता नव चेतन
प्रलय सृजन क्रम दुर्निवार है!

[वादित्र संगीत में भाव परिवर्तन]

हँसता नव जीवन अरुणोदय
तम प्रकाश में होता तन्मय,
सिन्धु क्षितिज पर दूर स्वप्न स्मित
उठता स्वर्णिम ज्योति ज्वार है!
यह स्वर्गिक भावों का शोणित
जीवन सागर लगता लोहित
सत्य भरा स्वप्नों का वोहित
भार मुक्त लग रहा पार है!

[आशा उल्लासप्रद वादित्र संगीत के साथ यवनिका पतन]



दिग्विजय

[जीवन सत्य की बहिरंतर विजय का काव्य रूपक]

मरुत
अप्सरा
खेचर
नील ध्वनि
दिशा स्वर
भू स्वर

[अंतरिक्ष में अप्सराओं का गीत]

गाओ, जय गाओ !
ईश्वर का प्रतिनिधि नर,—
दिग्विजयी मानव पर
नंदन वन के प्रसून
हँस हँस बरसाओ !

ओ विद्युत् बालाओ,
प्राणों की ज्वालाओ,
स्वर्ग मर्त्य मध्य स्वर्ण
सेतु नव बनाओ !

चंद्रकला पंखों पर
अप्सरियो, उड़ निःस्वर
दिग् युग का सुरधनु स्मित
केतन फहराओ !

पृथ्वी का घटे भार,
उमड़ें चैतन्य ज्वार
अयि अनंत यौवन मयि,
नूपुर झनकाओ !

रजत-नील मुक्त व्योम
निकट शुक्र भौम सोम,
शोभा आनंद प्रीति
लोक में जगाओ !

मादक नर – देह – गंध
दिशा हर्ष-मत्त अंध
मिले धरा-स्वर्ग, फूल
सेज नव सजाओ !

खुला ज्योति लोक द्वार
अंतरिक्ष आर पार
भू-सुत करते विहार,
भुवन नव बसाओ !

[संगीत ध्वनि धीरे-धीरे अंतरिक्ष में लय हो जाती है। मरुत और अप्सरा का क्षितिज में वार्तालाप ।]

मरुत

धन्य, शब्द-गति, ज्योति-वेग को भी अतिक्रम कर
किस प्रवेग से छूट, आ रहा कौन अस्त्र यह ?
वायु याण या अग्निबाण ? या दिशा-यान यह ?
या नूतन ग्रह उदित हुआ अब अंतरिक्ष में ?...
सौर-चक्र की स्वर्णिम गतिलय में बँध कर जो
परिक्रमा करता पृथ्वी की—मुग्ध, चतुर्दिक्
विश्व नृत्य में मत्त—ज्योतिरिंगण सा चंचल ।

[प्रक्षेपास्त्र के उड़ने की ध्वनि]

कौन मूढ़ खग, दुःसाहसी प्रमत्त मनुज या
ढीठ पंख झुलसाने—गर्वित, दृष्टि गँवाने
भंग कर रहा शुभ्र शांति निःसीम नील की—
जहाँ अमर भी श्रद्धानत, निःशब्द विचरते,
अप्सरियाँ नूपुर उतार अभिसार स्थलों पर
आतीं जातीं — संकेतों से भाव प्रकट कर !...
नहीं जानता क्या वह, प्रहरी सूर्य दिशा का ?..

अप्सरा

अघटनीय यह,—कोई अमित नील को नापे !
प्रथम बार धरती के गुरु-आकर्षण से उठ

चढ़ता अलख अलंघ्य शृंग पर कोई भूचर!
थाह सिन्धु की लेता हाय, नमक का पुतला!...
कैसे ध्वनि संकेत गूँज नीहार लोक को
तड़ित् तरंगों में कंपित करते!—सुनते हो?

[ध्वनिसंकेत स्पष्ट होते हैं]

एक स्वर

कैसे हो तुम खेचर? मैं धरती का स्वर हूँ!...

खेचर

जी, प्रसन्न हूँ,—गगनरंग में!—बोल रहा हूँ—
ठीक कार्य कर रहे यान के यंत्र—यथाविधि—
अक्षत हूँ मैं!—दिशापाल अनुकूल दीखते!—

एक स्वर

कैसा लगता वहाँ?

खेचर

न पूछो! — अद्भुत! अद्भुत!

एक स्वर

दिङ् मंडल के कुछ अनुभव बतला सकते हो?

खेचर

रजत-नील-प्रभ स्वप्न लोक मे विचर रहा हूँ!
शुभ्र शांति के भाव मौन निःस्वर सागर में
डूब रही निःस्पंद चेतना — भारहीन हो!
उच्च वायुओं की पवित्रता में अवगाहित
मन तन्मय हो रहा — निखिल का महत् स्पर्श पा!
भार मुक्त तन तैर रहा आनंद राशि मे!
सूर्यातप शत रत्नछटाओं में कँप सुन्दर

ताने स्वर्णप्रभ वितान गोलार्ध नील में!
हरित नील कंदुक सा दीख रहा भूगोलक!
आः, अति रोमांचक, रहस्यमय, महा दिशा का
निःस्वर नीलम मणि प्रसार यह! — जहाँ धरा के
लघु जीवन संघर्ष लीन हो आरोहों में
अर्थहीन से लगते घन नीरव अनंत में! —
यह अगाध, निर्वाक्, अकूल उदधि हो!...धरती
मात्र वाह्य जल-तल जिसकी — आवेग तरंगित!

एक स्वर

कैसा दीख रहा खगोल? नक्षत्र, क्षितिज, भू?

खेचर

वृहत् खगोल? न पूछो, पुरुष पुरातन कोई
देख रहा अविचल, अनिमेष, समाधि मग्न सा,—
रोम रोम में अपने शत ब्रह्मांड प्ररोहित,
ध्यानावस्थित सा, असंग निःसीम शांति में!
स्वर्ण-हरित चेतना दिशा की सँजो हृदय में
प्रातः मणि आभा सी लिपटी जो अनंत में!

एक स्वर

आः, रोमांचक गाथा, निश्चय, अंतरिक्ष की!
शून्य, चिदात्मा मूर्त — आत्म साक्षात्कार-रत!

खेचर

कृष्ण-नील मुख पर स्मित स्वारुण रेखा सा
खिंचा प्रकाश-क्षितिज, भू की स्वर्णिम-कांची सा,
प्रभा-वृत्त हो अगणित छायाओं से विरचित!...
मुक्त प्रसार, — न किंचित् भी अवरोध सामने,
मात्र दृष्टि ही की सीमा — जो खो खो जाती!

नील-आस्य पर महा हास्य भर उज्ज्वल तारे
जगमग करते चिद् दीपों-से नभ करतल में।—
रत्नखचित आँचल लिपटाए स्फीत देह पर
गर्भवती लेटी हो दिशा अनंत कक्ष में,—
अंधी, गांधारी सी, शत भुवनों की जननी!···
अग्निबीज हो लिए शून्य या निज मुट्ठी में
दिशा योनि को उर्वर करने नव लोकों से!

एक स्वर

लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाय न खेचर दिक् प्रमत्त हो!

खेचर

मुझे नहीं इसका भय! — देख रहा धरती को
इंद्रधनुष में लिपटी — मुग्ध अनंत यौवना
नाच रही जो मुक्त उर्वशी सी असीम में!
देख रहे अपलक ज्योति ग्रह यौवन शोभा!
उड़ता गंध ग्रथित दुकूल रेशमी पवन का—
शस्य हरित चोली वक्षोजों के शिखरों पर—
झूल रहीं फेनोर्मिल नदियाँ कंठहार सी—
लहराता लहँगा सागर का रत्न मणि जड़ा
धूप छाँह मय रश्मिद्रवित रंगों से गुंफित!
नाच रही वह गिरि शृंगों के हाथ उठाए
नील मुक्ति में! — चित् प्रकाश से सद्यः वेष्टित!
देख रहा हूँ — भू के बहु देशों, राष्ट्रों को,
पार कर रहा महाद्वीप मैं पलक मारते—
स्मरण आ रहीं बहु विशेषताएँ देशों की
जन भू के वैचित्र्य भरे सुंदर जीवन की!
याद आ रही सुहृदों की, स्वजनों की प्रतिक्षण
स्मरण कर रहे होंगे वे भी निश्चय मुझको!
सोच रहे होंगे मेरे अद्भुत साहस की
बातें,—मैं भी कहाँ त्रिशंकु समान अधर में

लटक न जाऊँ—भटक न जाऊँ—लौट न पाऊँ!
चिंतित होंगे—महत् शून्य का एकाकीपन
निगल न जाए कहीं, अकेला पाकर मुझको,—
मनुज जाति से, गृह, स्वदेश से जो अब विरहित!
हँसते होंगे शत्रु—मोम के पंख लगा कर
सूरज से मिलने के मेरे दुःसाहस पर,—
कहते होंगे—हाथ बढ़ा कर क्या बौना नर
पकड़ चंद्र को लाएगा, करतल में धर कर?
पर, मैं मानव अंतर की आशाऽकांक्षा का
केवल प्रथम प्रतीक मात्र हूँ—जो अनादि से
शब्दहीन इस महानील के चिर रहस्य को
चीर, ज्योति स्वर-लिपि में अंकित, गुह्योच्चारित,
उसके बीजाक्षर मंत्रों को पढ़ने के हित
चिर आकुल था—उसके ज्योतिर्मय आँगन का
अभ्यागत बनने को उत्सुक!—जयी आज नर!
दिग् दुंदुभि घोषित करती मानव की जय को,
बज बज उठतीं तारों की रुपहली पायलें—
पुष्प हार ले स्वागत करतीं मुग्ध अप्सरा
रश्मि पंख, शत सुरधनु छायाओं में लिपटीं!...
दिशा हस्तगत आज साहसी धरा पुत्र के!
दूर हुईं दिग् गत बाधाएँ विश्व प्रगति की...
भू जीवन संयोजन की, मानव विकास की!

एक स्वर

धन्य जयी नर, धन्य जयी जीवन भू जन का!

खेचर

लो, मैं पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण कर चुका—
घूम समांतर क्षितिज वृत्त के, दिशा-यान में!
अब धरती पर उतर, मातृ भू की पदरज को
चूम, नमन कर, अंतरिक्ष के रजत-हर्ष को

माँ के चरणों पर अर्पित कर, जन जन में मैं
स्वर्ग श्वास भर दूँगा, गोपन अनुभव कह—
यह रहा उड़ाकू छत्र!—अनिर्वचनीय, आह,
निःशब्द नील, निर्वाक् नील, निःसीम नील!—

[हठात् निर्वाक् नि सीम मे गहन गम्भीर ध्वनि उठती है।]

नीलध्वनि

ठहरो दिग्चर ठहरो,—भू की परिक्रमा कर
खोल नील का वातायन, तुम गर्व स्फीत हो
लौट रहे अब दिग् विजयी बनकर धरती पर!
झूठा अरुणोदय ले जाकर—मानवेन्द्र बन!
सुनो!—नील, निःशब्द नील,—मैं बोल रहा हूँ,—
मेरा ही गुण शब्द—मौन मुझमें तन्मय जो
कभी मुखर हो उठता वैश्व-नियम से अपने!—
क्या पाएगी मनुज जाति इस समदिग् जय से?—
माना, मंगल, चंद्र, शुक्र में धरा पुत्र ने
विजय वैजयंती फहरा ली!—तो इसमें क्या?
तोड़ सकेगा मानव अंधी लौह नियति को?—
पीस रही जो उसे क्रूर निर्मम पाटों मे!
देह प्राण मन मे बंदी कर दिव्यात्मा को,
भेद बुद्धि से शोषण कर हृत्पद्म ज्योति का,
जरा मृत्यु पंजों मे निर्जर को दबोच कर,—
अहं-धूलि से अंधा कर आलोक चक्षु को!

[गम्भीर ध्वनि प्रभाव]

सुन रे दिग्चर, महानील का उद्बोधन सुन!
तू मेरा संदेशवाह बन भू जन के हित,
आमंत्रण ले जा मेरा—मैं महाकाल हूँ।
अभी काल पर जय पाना है धरापुत्र को।—
मैं उसको ललकार रहा हूँ!—खड़ा प्रतीक्षा में

मैं, स्वयं पराजित होने मानव के
हाथों से—मेरे ऊर्ध्व शिखर पर चढ़ वह निर्भय
पाएगा अपनी सार्थकता,—शांति, ज्योति,
आनंद, प्रीति, सौंदर्य अनश्वर,—अमृत-तत्त्व !
जा, ओ भूचर, तू मेरा संधि निमंत्रण ले जा—
मैं रण के हित भी उद्यत हूँ—मानव चुन ले !"'
मैं प्रसन्न हूँ तेरे निष्फल दुःसाहस से,
बुद्धि-कुशल खोखले यत्न से !—अंतरिक्ष के
भीतर अगणित अंतरिक्ष हैं—आकाशों के
भीतर अमिताकाश सूक्ष्म, अति गुह्य, अगोचर,—
महाकाल का गूढ़ विधान दिशा-प्रांगण पर !
काल जयी बन !—आत्मजयी हो विश्वजयी भी !
बिना मेरु पर चढ़े, मात्र शाखा-मृग सा तू
ग्रह से ग्रह पर कूद, क्षितिज से फाँद क्षितिज पर
व्यर्थ करेगा क्या ? बाहर के जग में खोया,
नक्षत्रों की चकाचौंध में,—रिक्त परिधि जो !
तू ही सब का केन्द्र,—केन्द्र ब्रह्मांड—विश्व का—
तेरे ही भीतर सूरज, शशि, ग्रह, उपग्रह सब !
आत्मवान्, तू धराधाम को बदल स्वर्ग में !
बाँध विविध भूदेशों को नव मानवता में—
आज विरोधी शिविरों में जो बँटे हुए हैं !
भू-मन का तम मत ले जा तू अन्य ग्रहों में—
राग द्वेष, कटु घृणा कलह, निन्दा, प्रतिस्पर्धा !
नक्षत्रों की शुभ्र शांति को युद्ध क्षेत्र के
नारकीय कोलाहल में मत बदल व्यर्थ ही !

खेचर

[ससंभ्रम]

गुह्य, पुरातन-तम स्वर फिर से सुन पड़ता है !

अविनाशी हूँ मैं!—फिर तुझको जगत् चक्र में
पीसूँगा,—नव सृष्टि सँजो कर!—विश्व ध्वंस कर
लोक-प्रलय तू भले बुला ले,—तुझको फिर से
काल शिखर जय करना होगा—आत्म उन्नयन कर,
जन-भू पर मनुज-हृदय का स्वर्ग बसा कर!
दिक् प्रमत्त, विज्ञान शक्ति से बहिर्जगत की
रचना कर तू, आत्म ज्ञान से अंतर्जग की,—
प्रेम-स्वर्ग रच मनुज हृदय में!—देह प्राण मन
हों कृतार्थ, आनंद स्रोत में अवगाहन कर!
इंद्रिय जीवन कुसुमित हो भू की शोभा में,—
अंतः रस अभिषिक्त, बाह्य बंधन से विरहित!
एकांगी भौतिक विकास से उन्मद भू-जन
मन्यु रुद्र का सहें!—सत्य का मुख पहचानें!...
पथरा गयी विविध स्वार्थों में मनुज चेतना
गत मूल्यों, धर्मों, संस्कृतियों में शत खंडित,
जाति पाँति, वर्णों देशों में नग्न-विभाजित!
महत् खंड जब तक जन मन का प्रकृति वमन से
नष्ट न होगा—जन्म न ले पाएगा नूतन—
हृदय-स्वर्ग रचना संभव होगी न मर्त्य हित!
हुं—हुंकार रहा निश्चेतन प्रकृति गर्भ में—
गरज उठा, लो, अंबर—टूट रहीं शत विद्युत्!

[मेघ गर्जन तथा वज्र निपात का घोर रव]

खेचर

गूढ़, पुरातन, रंध्रहीन अंतर-ध्वनि उठती!
संकट क्षण, दिक् संकट क्षण यह!—बुझी हुई
चिनगारी सा, अह, बैठ रहा मन आत्म पराजित!
मात्र यंत्रवत् कार्य कर रहे मन, तन, अवयव!
लगता है लड़खड़ा उठेंगे पग भू को छू!

दिशा स्वर

मा भैः, मा भैः ! मैं हूँ माता दिशा, काल को
अपने तन्मय उर में धारण करती हूँ मैं
मूर्तिमती प्रतिछाया उसकी !—उतरो खेचर,
उतरो, मेरी बाँह पकड़ कर, उतरो भू पर !
नयी दिशा दूँगी मैं मानव मन, भू-जन को !....
दिगभियान हो सफल तुम्हारा, तुम मानव को
महाकाल का नीलकंठ संदेश दे सको !
रुद्र और शिव एक साथ जो, कारण के कारण,
निश्चेतन अतिचेतन के स्वामी, केवल !

खेचर

मातृ प्रकृति का आश्वासन यह !—निर्भय हूँ मैं,
तुम्हें समर्पित कर मा, अपना तन मन जीवन !

[सोल्लास]

दिखलाई पड़ता स्वदेश तट,—सद्यः जोते
खेतो के रज की सौरभ यह !—उतर गया, लो,
मखमल सी दबती पैरों के नीचे मिट्टी—
स्नेह स्निग्ध सोंधी सुगंध नासापुट में भर
पुलकित करती तन,—अंबर की घन नीरवता
वंचित है इस इंद्रिय दीपन मादन सुख से !
क्षितिज वृत्त अब सीमित होकर नव वसंत के
स्मित पल्लव अधरों से मर्मर स्वागत करता—
नील मौन की चेतावनी नहीं भूला मन !
लगता, जड़ से भी पा सकता मन चेतन को,
यदि चेतन ही जड़ है तो जड़ भी चेतन है...
सत्य वही है,—दृष्टि मात्र बदली है केवल,
ज्ञान और विज्ञान एक ही तत्त्व सिखाते !—
कुहरा सा हट गया, भेद खुल गया वस्तु का !
ज्ञान दीप्त विज्ञान पंथ ही नया पंथ है !

अन्य नहीं पथ, अन्य नहीं पथ, अन्य नहीं पथ,
खुला सर्व हित मात्र यही सामूहिक पथ है!—
देख रहा मैं मनोनयन से दिङ् मानव को,
लेटा हो वह महा दिशा में अर्धोत्थित तन,
अतल सिन्धु में चरण, जघन कटि उदर धरा पर,
हृदय स्वर्ग में, मस्तक त्रिदिव-क्षितिज से ऊपर!
जाग रहा वह ध्यान लीन भी, ध्यान हीन भी?
जय नव मानव की, जय नव विज्ञान-ज्ञान की.
भौतिक पथ से चढ़े साथ सामाजिक मानव
आध्यात्मिक, सांस्कृतिक लक्ष्य को—यही साध्य है,
यही सुलभ साधन!—पथ संकट उभय ओर हैं!

[जन कोलाहल का प्रभाव]

एक स्वर

देखो, देखो, गगन रंग वह, उतर रहा है!
अंतरिक्ष का दूत,—उड़न छत्री खोले वह,
धरती धरती पर पग!

कई स्वर

स्वागत, स्वागत खेचर!...

एक स्वर

बिना लड़खड़ाए ही, लो, वह चला आ रहा!
खोल दिशा-मुख का अवगुंठन, चूम क्षितिज के
अरुण-रेख अमृताधर, भेद रहस्य नील का!

कई स्वर

स्वागत हे स्वागत, दिङ् मानव, व्योम जयी नर!
रुद्ध द्वार खुल गए धरा हित आज स्वर्ग के!

[नर नारी का समवेत गीत]

अभिनंदन, वंदन हे !
पृथ्वी के हित खुला स्वर्ग का
स्वर्ण क्षितिज तोरण हे !

छाया पथ पर चल मानव रथ
देख रहा भूमा का इति अथ,
धरती के पुत्रों से शोभित
मह मह का आँगन हे !

खुले रुद्ध भूजीवन बंधन
जड़ की सीमा हुई समापन—
लगता शून्य अनंत, सूर्य से
दीप्त, आत्म चेतन हे !

विश्व मुक्ति ही व्यक्ति मुक्ति पथ,
मानवता की तुम्हें हे शपथ,
दिग् युग रचना करो, एक हो
विश्व, एक भू-जन हे !

हो भौतिक सोपान स्वर्ग तक,
आत्म दीप्त अंतर दृग अपलक,
भावों की शोभा में मुकुलित
हो इंद्रिय जीवन हे !

प्राणों की चिर चंचल परियाँ
शुभ्र चेतना की अप्सरियाँ,
धरा-स्वर्ग रचना मंगल मे
भरतीं आलिंगन हे !
वंदन अभिनंदन हे !





लेखक

जन्म : २० मई सन् १९०० ई०, कूर्माचल प्रदेशके अन्तर्गत प्रकृतिकी मनोरम क्रोड कौसानी (अल्मोड़ा) में ।

लेखन

पल्लव, वीणा, ग्रंथि, गुंजन, युगवाणी, ग्राम्या, युगपथ, स्वर्ण किरण, स्वर्ण-धूलि, उत्तरा, अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद, हरी बाँसुरी : सुनहरी टेर, [काव्य संकलन] रजत शिखर, शिल्पी, सौवर्ण, [काव्य रूपक] ज्योत्स्ना, [नाटक] पाँच कहानियाँ, [कथा संग्रह] मधुज्वाल, [अनुवाद] ।

●